आचार्य चतुरसेन

# ढहती हुई दीवार



हिन्द पॉकेट बुक्स

## 1. साध्वी

दिल्ली से कुतुब के रास्ते में यूसुफसराय एक छोटी-सी बस्ती है। अब से कुछ वर्ष पहले यह बस्ती बहुत कम आबाद थी। कहना चाहिए, गिनती के सौ-सवा सौ कच्चे घरों का वह एक गांव-सा था। कुतुब को जाने-आने वाले सैलानी और राहगीर यहां कुछ देर रुककर सुस्ता लेते थे। इस बस्ती के निवासी गरीब और कम पढ़े-लिखे थे। असल में यह स्थान एक मुगल-कालीन भग्नखण्ड था, जिसके प्राचीन इतिहास से अब हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी बस्ती के उत्तरीय कोण पर एक छोटा-सा पुराना घर बना हुआ था, जिसमें केवल दो प्राणी निवास करते थे। एक वृद्धा और दूसरी एक गाय। गौ के साथ उसका सखी-जैसा सम्बन्ध था। वह गौ की सेवा अपने शरीर से बढ़कर करती थी। जब वह उसे सानी देती तो सैकड़ों बातें करती। रात को जब कपड़ा डालती, तो ठण्ड से बचने के दो-चार उपदेश अवश्य देती। गौ उसकी और वह गौ की भाषा को समझती थी। वह उसके सामने गर्दन झुका देती और उसकी गोद में मुंह डाल देती। दोनों चिर सहयोगिनी बहनों की भांति बहुधा परस्पर स्नेह का आदान-प्रदान करती रहती थीं। उनका मूक प्रेम बड़ा सुन्दर, बड़ा प्रभावशाली और बड़ा मधुर था।

इस घर में इन दो प्राणियों के सिवा और एक प्राणी भी कभी-कभी दीख पड़ता था, जो इन दोनों का जीवन-प्राण या आधार स्तम्भ था। वह था केशव। गांव में सब उसे मास्टर दादा कहते थे। केशव को अपने पिता के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। केशव चार मास का गर्भपिण्ड था, उसके पिता का अचानक न्यूमोनिया रोग में देहान्त हो गया था। उस समय केशव की मां की उम्र सोलह साल की थी, और उसका विवाह हुए डेढ़ वर्ष हुआ था। चौबीस वर्ष व्यतीत हो गये, केशव तेईस वर्ष का युवक

हो गया। गांव की सोहबत और पढ़ाई की कठिनाइयों के कारण वह यूसुफ-सराय से दूर स्थित एक कालेज में एम० ए० में पढ़ता था। कालेज के पास ही एक मित्र के घर उसने रहने का प्रबन्ध कर रखा था और केवल छुट्टियों में ही दो-चार दिन के लिए अपनी माता के पास चला आता था। गांव-भर में एम० ए० तक पढ़नेवाला वह अकेला युवक था, इसलिए गांव आने पर उसकी खूब प्रतिष्ठा होती थी। वह लोहे के समान ठोस, बालक की भांति सरल, गंगाजल की भांति पवित्र और समुद्र की भांति गम्भीर था। वह जब गांव में आता उसकी छुट्टियों का काम कालेज से भी अधिक बढ़ जाता था। गांव-भर के सैंकड़ों काम उसे करने पड़ते थे। कितने ही पत्र लिखने-पढ़ने पड़ते, खासकर स्त्रियों के। यह काम वह बचपन से ही करता था। कितने ही अदालती मामलों में उसे किसानों तथा अनपढ़ ग्रामवासियों को सलाह देनी, दरखास्तें लिखनी, मिस्लें देखनी आदि काम करने पड़ते थे। गांव के पुरुष विविध कामों से उसकी नाक में दम किये रहते थे। पर गांव की स्त्रियां उसे और भी एक मामले में तंग किया करती थीं। वे उसे एक सुन्दर बहू लाने के लिए विविध रीति से उत्तेजित करती थीं। पर वह सदैव मौन मुस्कराहट से ही उन्हें उत्तर देता। स्त्रियां उसकी माता से कहतीं—'केशव इतना पढ़ गया है पर उसे समझ कुछ नहीं है।' परन्तु केशव की मां कभी कोई उत्तर उन्हें नहीं देती थी।

केशव की मां का असली नाम गांव में एक-दो वृद्धा स्त्रियों को छोड़ और कोई नहीं जानता। आज तेईस वर्ष से उसका यही नाम, 'केशव की मां' गांव-भर में प्रसिद्ध है। छोटे से बड़े तक, ब्राह्मण से भंगी तक, उसे इसी नाम से पुकारते हैं। उसकी अवस्था इस समय चालीस को पार कर गई थी। उसका शरीर कृश, मुखमुद्रा गंभीर, नेत्र स्थिर और स्वभाव अत्यन्त कोमल था। वह अल्पभाषिणी और सत्यवादिनी प्रसिद्ध थी। किसी के घर बहुत कम जाती थी। गांव के किसी झगड़े में नहीं थी। यथा-सम्भव वह सबका उपकार करने की चेष्टा में रहती थी। प्रत्येक पर्व त्योहार और विशिष्ट दिनों में पूर्ण उपवास रखती थी। वह कभी जूते नहीं पहनती थी, न कोई रंगीन या कीमती वस्त्र पहनते किसी ने उसे देखा था। खद्दर की धोती और उसी की कुरती सदैव उसके शरीर पर रहती थी। उसका घर छोटा-सा और कच्चा था। इसमें कड़ियों से पटा हुआ

एक कोठा, एक छप्पर का दालान, एक छोटा-सा कच्चा रसोईघर और जरा खुला-सा आंगन था। आंगन में वह सब्जी-तरकारी बो देती थी। इसका उसे शौक था। चौक में तुलसी का एक पौधा था, जिसे वह नित्य लीपती और जल देकर पूजा करती थी। नित्य चार घड़ी रात रहे उठ कर घर को साफ करती, गौ की सानी लगाती और स्नान करके तुलसी के सम्मुख पूजा करने बैठ जाती थी। पूजा क्या थी, एक गीत की इस भग्न कड़ी मात्र को बहुत ही अस्पष्ट स्वर में गाती रहती थी—'तुलसी महारानी नमो नमः।'

पूजाकृत्य, गौ-सेवा और प्रातःकृत्य सबसे निबटकर वह चरखा कातने बैठ जाती थी। दिन-भर के खाने लायक आटा तो वह सूर्योदय से पूर्व ही पीस लेती थी। दोपहर होने पर वह चरखा रखकर रसोई तैयार करती थी। केशव जब घर रहता था, तब रसोई का आयोजन कुछ बढ़ जाता था। पर ठाठदार रसोई उसने बनाई ही नहीं। जब वह अकेली रहती, तब एक वक्त रसोई करती थी। भोजन के बाद वह कुछ देर रामायण का पाठ करती। इसी को वह विश्राम करना समझती थी। फिर वह चरखा कातने बैठ जाती। वह दिन में आधा सेर से लेकर ढाई पाव तक बहुत बारीक सूत कातती थी। यही सूत उसके गुजारे का साधन था। कुछ धरती भी थी, जिसे वह बंटाई पर उठा देती थी और कुछ अन्न साल-भर में घर आ जाता था। गत चौबीस वर्षों से उसने इसी भांति अपना वैधव्य व्यतीत किया, केशव को पाला और पढ़ाया। इस महासती ने विधवा धर्म की कठोर तपश्चर्या करते हुए एक ऐसे पुत्र को पाला और शिक्षित किया, जिसका पिता उसे केवल गर्भस्थ पिण्ड छोड़ मरा था।

एक दिन संध्या समय केशव गांव के बाहर खुले खेतों में घूम रहा था। गर्मी के दिन थे, दो-चार दिन पहले ही वह वार्षिक परीक्षा देकर लौटा था और यह सोच रहा था कि आगे क्या करूं? बहुत देर तक उसकी विचारधारा चलती रही। अंधेरा बढ़ रहा था। उसने देखा कि शिवालय के बड़े कुएं पर एक स्त्री नीचा सिर किए बैठी है और रो रही है। तब तो उसने बिल्कुल ध्यान नहीं दिया, वह घूमता हुआ आगे को बढ़ गया। पर जब लौटा, और इतना अन्धकार बढ़ने पर भी उसने उसे वहीं उसी भांति बैठे देखा तो वह धीरे-धीरे उसके पास पहुंचा। देखा वह अभी भी रो रही है,

पास ही पीतल की एक कलसी लुढ़क रही है। केशव ने पास जाकर पहचान लिया वह उसके पड़ोस की विधवा बहू है। केशव ने आगे बढ़कर कहा—"भाभी, यहां बैठी क्यों रो रही हो?"

युवती के लिए इन्कार करना सम्भव न था। उसने आंसू पोंछकर कहा—"क्या कहूं, पानी लेने आई थी, पेट में जोर से दर्द होने लगा।" इतना कहकर उसने आंखें नीची कर लीं।

केशव ने कहा—"पर भाभी, इतनी दूर इस शिवालय के कुएं से पानी भरने तुम क्यों आईं? कुआं तो हमारे घर के पास ही है।"

"पर मां जी तो इसी कुएं का पानी पीती हैं। मैंने उनसे कहा भी कि अब अंधेरे में मैं पानी नहीं लाती, सवेरे ला दूंगी, पर वे नहीं मानीं।"

"भाभी, तुम्हें अंधेरे में इतनी दूर अकेले नहीं आना चाहिए। यह पुराना शिवालय है। यहां कोई दिया जलाने भी नहीं आता। खैर अब चलो, तुम्हें घर पहुँचा दूं।"

"नहीं भैया, अब मैं ठीक हूं। कलसी भर लूं तो जाऊं।"

"कलसी मैं भर लाता हूं।" इतना कहकर केशव उसके बहुत रोकने पर भी कुएं से जल भर लाया और अपने कन्धे पर कलसी रखकर कहा—"चलो घर पहुंचा दूं।"

उस स्त्री ने बहुत रोका, पर केशव नहीं माना। वह कलसी कंधे पर लिये आगे-आगे चलने लगा। वह स्त्री भी पीछे-पीछे आने लगी। मार्ग में अंधेरा छाया हुआ था।

केशव ने इस कार्य के अनौचित्य पर ध्यान नहीं दिया। ज्यों ही वह कलसी लेकर घर के भीतर घुसा, वृद्धा गृहिणी से कहा—"दादी, भाभी पेट के दर्द से कुएं पर बैठी रो रही थी। मैं न पहुंचता तो न जाने कब तक पड़ी रहती!"

यह सुनकर वृद्धा आंखें चढ़ाकर बहू को घूरने लगी। बहू ने समझ लिया कि अब प्रलय हुआ चाहती है। उसने धीरे से केशव से कहा—"भैया, अब तुम जाओ।"

वृद्धा गरज पड़ी—"भैया अब तुम जाओ! अरी कुटनी, भैया को यहीं न रख ले, कहां से लगा लाई है? इन भले घर के लड़कों को तो देखो लिहाज-शरम भून खाई। पराई बहू-बेटियों पर मंडराते फिरते हैं।"

केशव के शरीर में खून की गति रुक गई। उसने कहा—"दादी कहती क्या हो? भाभी ने तो बहुत मना किया पर···"

"हां, आज इस लुच्ची को झोंटा पकड़कर घर से न निकालूं तो बाप की बेटी नहीं। कम्बख्त खसम को खा गई,अब यारों को घर में लाती है।"

इसके बाद उसने केशव को ज्वालामय नेत्रों से देखकर दो कदम आगे बढ़कर कहा—"क्या तुम्हारे घर में कोई बहू-बेटी नहीं है, जो पराई बहू-बेटी के आस-पास मंडराते रहते हो?"

केशव की जबान तालू से चिपक गई। बहू ने कहा—"भैया, हाथ जोड़ती हूं, चले जाओ। अम्मा की बातों का ख्याल न करो।"

केशव वहां से चल दिया। ऐसा मालूम होता था मानों उसके प्राण निकल जायेंगे। वह चुपचाप अपने कमरे में आकर पड़ा रहा। उस रात उसने भोजन नहीं किया। वह सोचने लगा, हे ईश्वर, क्या मनुष्य इतना भी पतित हो सकता है। यह तो कभी विचारा ही न था। अपनी ही बहू-बेटी को लांछन देना उसके सरल विचार में न आने जैसी बात थी। वह गांव में कम रहता था। उसे वहां के वातावरण का कुछ भी ज्ञान न था। दूसरे दिन वह बड़ी देर तक बिछौने पर पड़ा रहा। उसे प्रतीत हुआ मानों ज्वर चढ़ रहा है। जब माता ने आकर उसे जगाया तो देखा उसकी आंखें लाल हो रही हैं और चेहरा पीला। वह पास बैठ गई। पुत्र के शरीर पर हाथ फेरने लगी और कहा—"बेटे, क्या हुआ है? ऐसे क्यों हो रहे हो?"

केशव में सब बात खोलकर कहने की शक्ति न थी। वह कुछ न कह सका। बहाना बनाकर उठा और शिवालय की ओर चल दिया। वहां वह दोपहर तक एक पेड़ के नीचे पड़ा रहा। वह यही सोच रहा था—क्या मैंने कुछ अनुचित किया? यह सत्य है कि विधवा युवती के साथ इतनी घनिष्ठता शिष्टाचार के विपरीत है। पर उसकी शिक्षा और संस्कृति क्या उस झूठे शिष्टाचार के पीछे उस अंधेरे में उस स्त्री को वहीं बैठे रहने देती? दोपहर को घर में आकर देखा, घर में महाभारत मचा हुआ है। वह वृद्धा दहाड़-दहाड़कर अपनी छत पर खड़ी हुई केशव की मां और उसके पुरखों को न कहने योग्य गालियां सुना रही है। गांव-मुहल्ले के स्त्री-पुरुष, बालक सब खड़े तमाशा देख रहे हैं। कोई धीरे-धीरे टीका-टिप्पणी भी कर देता है। केशव भीड़ को चीरता हुआ सीधा घर में आ गया। घर में भी दो-चार

स्त्रियां खड़ी थीं, पर केशव की मां पूजा की कोठरी में चुपचाप बैठी थी। उसने न एक शब्द कहा, न किसी से बात-चीत की।

घर पहुंचते ही केशव के हृदय में एक चिनगारी लगी। आत्मग्लानि और शोक के स्थान पर क्रोध प्रज्वलित हो उठा। उसने तनिक तेज स्वर में कहा—"मां !..."

केशव की मां ने उसे भीतर बुलाकर सामने बैठने का संकेत किया और कहा—"बेटे, जब तक मैं यहां बैठी हूं, यहीं बैठे रहो, खबरदार ! एक शब्द भी न बोलना।"

केशव ने कहा—"मां, मेरा कुछ भी अपराध नहीं।"

"शान्त रहो बेटे। शान्त रहो।"

"मां, मैं चुपचाप गालियां नहीं सुन सकता। मैं इस नीच औरत..."

केशव की मां उठ खड़ी हुई। उसने क्रोध-भरे नेत्रों से केशव को देखकर उसके हाथ पकड़ लिये और कहा—"एक शब्द भी बोलोगे तो ठीक न होगा। मेरे बेटे, चुप बैठे रहो।"

केशव चुप बैठा रहा। वृद्धा गालियां दे-दिलाकर चली गई। गांव की स्त्रियां भी आलोचना का कोई अवसर न पाकर चली गईं। अब केशव की मां कोठरी से निकलकर रसोईघर की ओर चली।

केशव ने कहा—"मां, मेरा कोई अपराध नहीं।"

गृहिणी ने कहा—"तब बेटे, कैफियत क्यों देते हो ? तुम्हें दुःख क्यों होता है ? लज्जा क्यों होती है ?"

केशव चुप हो गया। माता के इस गम्भीर तत्त्व को इतना पढ़कर भी न समझ सका। धीरे-धीरे गांव-भर में यही चर्चा भिन्न-भिन्न रूप से होने लगी। केशव के बाहर निकलने पर स्त्रियां किवाड़ की आड़ में खड़ी होकर उसे देखने लगीं। जो अब तक घूंघट नहीं काढ़ती थीं, वे भी घूंघट काढ़ने लगीं। बहुतों ने उससे बातचीत करने की चेष्टा भी की। गांव के पुरुषों के मन में भी सन्देह की छाया आयी। परन्तु केशव ने माता का ही अनुसरण किया। वह किसी से इस विषय में कुछ नहीं बोला। परन्तु गांव का वातावरण उसके लिए असह्य हो उठा।

## 2. दुखिया

वृद्धा ने घर में प्रवेश करते ही गरजकर कहा— "अरी अभागिन, हत्यारी, तू सो गई या मर गई, क्या सांप सूंघ गया तुझे ?"

उसने देखा, किसी ने जवाब नहीं दिया। घर के भीतर बहू एक कोने में धरती पर बेहोश पड़ी है। उसने बड़बड़ाते हुए उसे एक ठोकर मारी। बहू ने एक हल्के आर्त्तनाद के बाद करुण दृष्टि से लाल आँखों से सास की ओर देखा। वे आंखें क्रोध से नहीं, ज्वर से लाल हो रही थीं।

वृद्धा ने दांत पीसकर कहा—"अरी डायन, इस तरह क्यों घूरती है, क्या मुझे खायेगी ? यहां कोपभवन में रानी जी पड़ी हैं। मेरे लिए परांठे नहीं बनाये। मैं क्या कह गई थी ?"

बहू ने कहा —"अम्मा जी, परांठे चौके में बने रखे हैं। मुझसे हिला नहीं जाता। बदन में आग लग रही है, तुम जाकर खा लो।"

वृद्धा ने चौके में जाकर देखा, परांठे बिखरे पड़े हैं और कुत्ता उनका भोग लगा रहा है। वृद्धा वहीं बैठकर बहू को अनगिनत गालियां देने लगी। बहू चुपचाप पड़ी रही। वास्तव में वह बेहोश हो रही थी। गालियां देते हुए वृद्धा ने स्वयं चौका लगाया और खाना बनाने के आयोजन में लग गई।

एक अधेड़ आयु के पुरुष ने घर में आकर मुस्कराकर पूछा — "क्या हो रहा है गोविन्द की मां ?" वृद्धा के रौद्र रूप में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया। उसनें हंसकर धीमे स्वर में कहा—"क्या कहूं राजू के चाचा, इस घरखानी बहू के मारे नाक में दम है। जरा तिवारी जी के यहां चली गई थी और कह गई थी कि परांठे बनाकर रख देना। अब आकर देखती क्या हूं कि मक्कर किये पड़ी है। चौके में कुत्ते घुस रहे हैं। मैं तो गालीगुफ्तार, मारपीट सभी कुछ कर हारी। अब क्या करूं तुम्हीं कहो ?"

राजू के चाचा का असली नाम लाला रामकिशोर था। दिल्ली शहर में उनकी हवेली थी और लेन-देन तथा गिरवी-गठरी का धन्धा करते थे। यूसुफसराय में उनकी बहुत-सारी जमीन थी, जिसे उन्होंने किसानों को दे रखा था। महीने में एकाध बार वे यहाँ आया करते थे। परन्तु वे चरित्र के अच्छे आदमी नहीं थे। गोविन्द की मां से उनका अनैतिक सम्बन्ध था।

किसानों से निबटकर लाला रामकिशोर एक-दो घंटे गोविन्द की मां का सान्निध्य प्राप्त करते थे। मूंछों में खिजाब लगाते, आंखों में सुरमा डालते, मलमल का महीन कुरता पहनते, चुनी हुई धोती लटकाते, पान चबाते बेतकल्लुफ घर के अन्दर आ खाट पर बैठ जाते थे। रामकिशोर ने मुस्कराते और पान चबाते हुए कहा—"तुम भी गजब करती हो गोविन्द की मां, हर वक्त उस बेचारी पर लट्ठ लिये मुस्तैद रहती हो।"

"न रहूं तो क्या करूं ! मक्कर तो देखो।" इतना कहकर वह रामकिशोर को संकेत से उठाकर बहू के निकट ले गई। बहू उसी भांति पड़ी थी। रामकिशोर ने कहा—"कैसी हो बहू ?"

बहू सिकुड़ गई। एक हल्की-सी गति उसके अंगों में हुई और निश्चल पड़ गई। उन्होंने उसका हाथ छूकर देखा, अंगारे की भांति तप रहा था। उन्होंने कहा—"अरे, इसे तो बहुत तेज बुखार चढ़ा है ?"

"खाक बुखार चढ़ा है। मक्कर है, जैसे मैं जानती नहीं।"

"गोविन्द की मां, पत्थर की हो, दया भी नहीं आती।"

"ओ हो ! ये आये हैं बड़े दयाधाम।" वृद्धा यह कहती आंखें मटकाती चली गई। बहू को सासजी और इन महाशय के घनिष्ठ सम्बन्ध मालूम थे। वह उनसे मन-ही-मन घृणा करती थी, पर कुछ बोलती न थी। उनकी कलुषित दृष्टि उस पर भी है, यह भी उसे प्रतीत हो गया था। इससे वह उनसे सशंक और भयभीत रहती थी। उसने ज्यों ही रामकिशोर की आवाज सुनी, वह चौंक उठी। उसने सारे शरीर का बल लगाया और उठ खड़ी हुई।

रामकिशोर ने कहा—"अरे, ऐसे बुखार में क्यों उठ खड़ी हुई, और यह क्या, गीली धोती लपेटे ही पड़ी हो। बहू, इस तरह शरीर को कष्ट देने से क्या होगा ?"

बहू ने बहुत धीमे स्वर में कहा—"मैं अच्छी हूं। आप कृपा कर चले जाइये।"

"क्या कहने। मैं चला जाऊं। तुम्हारी देखभाल कौन करेगा ?"

"भगवान् मेरी देखभाल करेंगे।"

"भगवान् तुम जैसों के हृदय में ही प्रविष्ट होकर देखभाल करते हैं ! क्या खाट बिछाऊं ?"

"नहीं, चले जाइये।"

"बहू, इतनी दुःखी न रहा करो।" बहू कोने में मुंह करके रोने लगी। रामकिशोर अधिक कुछ न कहकर चले गये।

### 3. घायल

वही संध्या का समय था। बहू धीरे-धीरे कलसी बगल में दिये शिवालय के कुएं की ओर जा रही थी। अंधकार धीरे-धीरे बढ़ रहा था। उसने देखा, सामने से केशव आ रहा है। केशव किसी गंभीर चिन्ता में डूबा हुआ धीरे-धीरे घर की ओर लौट रहा था। सामने बहू को देख चौंककर दो कदम पीछे हट गया। बहू ने मुस्कराकर कहा—"डर गये भैया?"

केशव ने आगे बढ़कर डवडबाई आंखों से कहा—"भाभी, दादी बड़ी बुरी है।"

"उन्हें क्षमा करो भैया।"

"भाभी, तुम वहां उसके साथ कैसे रहती हो?"

"वह मेरा घर है, भैया!"

"तुम्हारा उस घर में क्या है?"

"पति की स्मृति।" बहू की दृष्टि पहले दूर क्षितिज पर डूबते सूर्य पर कुछ देर तक अटकी रही। फिर उसने आकाश की ओर देखकर आंखें बन्द कर लीं। कुछ ठहरकर उसने कहा—"भैया एक काम करोगे?"

"क्या भाभी?"

"तुम अब गांव छोड़ दो। क्या अब दिल्ली जाकर पढ़ोगे नहीं? इस बार इतने दिन से रह रहे हो?"

"मैं नहीं जाऊंगा भाभी।" केशव ने विद्रोही स्वर में कहा—"वह ऐसी वाहियात बातें क्यों कहती है भाभी?"

"इधर देखो।" कहकर बहू ने अपनी पीठ उघाड़ दी। वह चोटों से नीली हुई पड़ी थी। केशव ने घबराकर क्रुद्ध स्वर में कहा—"तब तुम पीटी भी गई हो।" वह तेजी से गांव की ओर चला। बहू ने उसे बहुत पुकारा, पर उसने नहीं सुना। वह घड़ा न भर सकी। वह भी तेजी से कदम बढ़ाकर घर की ओर चली।

केशव ने वृद्धा के घर पहुंचकर उससे कहा—"दादी, तुम भाभी को किस चीज से मारती हो, दिखाओगी वह चीज ?"

वृद्धा बैठी शीशा-कंघी हाथ में लिये शृंगार कर रही थी। उसने अचकचाकर कहा—"तू मेरे घर में आनेवाला कौन है रे ?"

"तुम भाभी को काहे से मारती हो दादी, जरा वह चीज दिखा तो दो।" केशव ने उन्मत्त स्वर में कहा।

"वह रस्सी पड़ी है।" कहकर वृद्धा ने चौक के कोने में पड़ी रस्सी की ओर संकेत कर दिया। केशव की भावभंगिमा से वह भयभीत-सी हो रही थी। पर जब केशव ने अपने सब कपड़े उतारकर फेंक दिये और रस्सी लेकर उसने जोर-जोर से अपने शरीर पर आघात करने शुरू कर दिये, तब तो वृद्धा आतंक से घबराकर चिल्लाने लगी।

इतने में बहू ने घर में प्रवेश किया। देखा, केशव बड़े जोर से अपने शरीर को रस्सियों के आघात से क्षत-विक्षत कर रहा है। उसने दौड़कर केशव के हाथ से रस्सी छीन ली। उसने तीव्र आर्त्तनाद करके कहा—"केशव भैया, इससे क्या भाभी का दुख दूर हो जायेगा ?"

केशव उसकी ओर आंखें फाड़-फाड़कर देखने लगा। फिर वह वहीं बैठकर रोने लगा। वृद्धा इस झमेले के तत्त्व को कुछ भी नहीं समझी। बहू को केशव से इस प्रकार बातें करती देखकर वह क्रुद्ध सर्पिणी की भांति फुंकारने लगी। उसने पड़ी हुई वह रस्सी उठा ली और बहू को मारना प्रारम्भ कर दिया।

केशव यह न देख सका। उसने बलपूर्वक रस्सी बुढ़िया से छीन ली, और मानों आपे से बाहर होकर वृद्धा पर आघात किया। वृद्धा हाय-हाय करके चिल्ला उठी। सब भांति निरुपाय होकर बहू वृद्धा से चिपट गई। इसी बीच केशव की मां ने प्रवेश किया। उसे देखते ही केशव ने रस्सी फेंक दी। वह चुपचाप माता की ओर देखने लगा।

केशव की मां ने कहा—"यह क्या किया बेटे ?"

"मां, मैं यह देख न सकता था।"

"तुमने बुरा किया बेटे। तुम यहां आये ही क्यों थे ?"

"मां !…"

"तुम अभी घर चले जाओ। वहां पूजा की कोठरी में बैठना।"

चिन्तक मित्र हो, फिर मैं तुम पर विश्वास भी करता हूं, श्रद्धा भी करता हूं, तुम्हारा आदर करता हूं। हमीद नें कहा—"तो कहो साफ-साफ।" केशव ने भाभी की सब बातें बता दीं। सुनकर हमीद ने कहा—"क्या भाभी अभी तक तुम्हारे घर है ?"

"हां !"

"दादी लेने नहीं आई ?"

"आई थी, पर मां ने नहीं भेजा !"

"दादी चुप बैठ रही क्या ?"

"नहीं ! अगले दिन उसने रामकिशोर को मां के पास भेजा ! राम-किशोर से मां ने स्पष्ट कह दिया कि भाभी को तुम्हारे और अपनी सास के कलुष ज्ञात हैं और वह तुम दोनों से घृणा करती है।"

"फिर ?"

"रामकिशोर चला गया ! दादी ने फिर गांव के दो-चार व्यक्तियों को भेजा। पर वे सभी मां के आगे बहस न कर सके ? सभी ने दादी के अत्या-चार को स्वीकार किया। मां को मैंने कभी इतना उग्र और जिद्द पर नहीं देखा था, जितना वे भाभी के इस कांड पर दीख रही हैं।"

हमीद कुछ देर सोचता रहा। फिर उसने कहा—"मुझे तुम अपनी माता के सम्मुख ले चलो।"

"अच्छा, तब चलो।" केशव की माता के सम्मुख पहुंचकर हमीद ने उनके चरण छुए। उसे आसन देकर मां ने पूछा—"तुम्हारा नाम बेटा ?"

"हमीद हूं मां, पर आप मुझे अपना केशव ही समझिए।" केशव की मां हंस पड़ी। केशव ने कहा—"हमीद मेरे घनिष्ठ मित्र हैं। बड़े भाई के समान मैं इनका आदर करता हूं। इनके विचार बहुत ऊंचे हैं।"

हमीद यद्यपि केशव की मां के साथ बातें कर रहा था, परन्तु उसकी दृष्टि घर के वातावरण का अन्वेषण कर रही थी। भाभी उसे दीख नहीं रही थी। इसी समय रामकिशोर और गोविन्द की माँ ने वहां पदार्पण किया। गोविन्द की मां ने केशव की मां से कहा—"तो तुम मेरी बहू को नहीं भेजोगी ?"

"जब तक तुम उस पर अत्याचार न करने की प्रतिज्ञा न कर लोगी, तब तक बहू मेरे घर से तुम्हारे घर नहीं जायेगी ?"

"पर तुम दूसरों के मामलों में दखल देने वाली होती कौन हो ?"

"प्रत्येक मनुष्य जो अत्याचार से युद्ध कर सकता है, अत्याचारों के सम्मुख आकर खड़ा हो जाता है। चाहे वे उसके ऊपर हों, या दूसरों के ऊपर।" रामकिशोर ने बाधा देकर कहा—"मैं थाने में जाता हूं।"

हमीद ने उठकर कहा—"चलो हम भी चलें !"

केशव भी तैयार हो गया। पर हमीद की करारी आवाज सुनकर रामकिशोर रुक गया। उसने कहा—"तुम कौन हो ?"

हमीद ने उत्तर दिया—"जो तुम हो ?"

रामकिशोर इस उत्तर से अवाक् रह गया। गांव के और लोग भी वहां आकर एकत्र हो गए। यह देख रामकिशोर वहां से चलने लगा।

हमीद ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"कहां चले ? अब आप यहां से जा नहीं सकते ?"

रामकिशोर ने उसे क्रोध से देखकर कहा—"तुमसे मेरा वास्ता ?"

"वास्ता न होता तो न आप यहां आते, न मैं यहां आता।"

इस नोंक-झोंक में गांववालों को रस आ रहा था। इसलिए सब चुपचाप दोनों की बातें सुनने लगे। हमीद ने व्यंग्य से कहा—"लाला, तुमने और भाभी की सास ने मिलकर भाभी को मारा है, उसे कुपथ पर चलने के लिए विवश करने की चेष्टा की है, उसकी पीठ लहू लुहान हुई पड़ी है। सरकारी डाक्टर इसकी जांच करेंगे। अब पुलिस में तुम नहीं, मैं जाऊंगा और तुम दोनों को मेरे साथ थाने चलना होगा।"

गोविन्द की मां चिल्ला-चिल्लाकर गालियां देने और रोने लगी। रामकिशोर वहां से खिसकने का बहाना ढूंढ़ने लगा। पर हमीद तो जैसे पत्थर की शिला बनकर अड़ा खड़ा था।

हमीद ने ऊंची आवाज में भीड़ से कहा—"आप सब लोग इस बात के गवाह हैं कि भाभी को रस्सी से बांधकर रस्सी से उसकी पीठ उधेड़ी जाती रही है और ये लाला रामकिशोर तीन-तीन चार-चार घण्टे किवाड़ बन्द किए मकान में अन्दर रहते रहे हैं।"

गांव का युवक समुदाय चिल्ला उठा—"हां, सब सच है। हम पुलिस से सब कहेंगे।" स्त्रियों में भी कानाफूसी होने लगी।

लाला रामकिशोर ने केशव की मां के पैर पकड़ लिये। उसने कहा—

"केशव की माँ, तुम जो हुक्म करो सो करूं।"

हमीद ने आगे बढ़कर कहा—"लाला, तुम्हारा फैसला मैं करता हूं। लाओ बीस रुपये निकालो।"

रामकिशोर ने जेब से रुपये निकालकर गिने अठारह थे। हमीद ने कहा—"लाओ अठारह ही दो।"

रुपये लेकर हमीद ने अपने पास खड़े एक युवक से कहा—"भाई जरा कष्ट करो। इन रुपयों की मिठाई या बताशे जो-कुछ भी यहां शीघ्र मिल सके ले तो आओ।"

रुपये हाथ में लेकर दो युवक लपकते हुए चले गए। केशव की मां ने हमीद की ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखा। पूजा की माला उनके हाथ में थी। हमीद ने माता की पदवन्दना करके कहा—"माता के विपरीत मैं कुछ भी नहीं करूंगा। मैं वही करूंगा जो एक वीर माता उचित समझती है।"

हमीद ने ऊंची आवाज में पुकारा—"भाभी! भाभी! कहां छिपी हो, बाहर तो आओ।"

फिर उसने माता से कहा—"मां, भाभी को जरा बुलाना तो।"

भाभी दीवार की ओट में सब सुन और देख रही थी। हमीद की आवाज पर वह वहां आ खड़ी हुई। उसने सबको प्रणाम किया। भाभी का मलिन वेष, दुर्बल काया, संतप्त मुख और पीड़ित शरीर को देख हमीद का मन हाहाकार कर उठा। उसने गांववालों से पूछा—"यदि यही स्त्री आपमें से किसी की बहन या बेटी होती और इस दुर्दशा में पड़ी होती तो क्या आप उसकी मृत्यु की कामना करते? क्या आप यह चाहते कि वह दिन-भर दुःखी रहे, रोती रहे, और रस्सी की मार सहे, केवल इसलिए कि वह विधवा है। मैं आप सबसे यह प्रार्थना करता हूं, विनती करता हूं कि आप इस विधवा को जीवन-दान दें। इसे जीने का अधिकार दें। इसें हंसने का अधिकार दें। वह जीवन, वह हास्य कैसे मिलेगा? इसे सम्मान और प्रेम देकर।" रामकिशोर से जब हमीद ने बीस रुपये मांगे थे तो उसने समझा था कि हमीद रुपये लेकर मुझे जाने देगा और मेरी जान बच जायेगी। परन्तु हमीद ने जो पग बढ़ाया था, उसके सामने अब वह स्पष्ट होने लगा। गांव उसके साथ था।

गोविन्द की मां ने कहा—"इस कलमुंही को कौन सम्मान देगा?

हमीद ने कहा—"वह भी तुम्हारी ही तरह एक नारी है। वह उगता हुआ सूरज है और तुम डूबता हुआ सूरज। भाभी की आयु में तुमने जो कल्पनाएं की थीं, उन्हें स्मरण करो। तुम्हारा पुत्र तुम्हें अवश्य छोड़ गया, पर अब तो भाभी ही तुम्हारा पुत्र है। दादी मां, तुम इसे आशीर्वाद दो। तुम्हारे आशीर्वाद और प्रेम के बिना तो इस मृत नारी में जीवन आ ही नहीं सकता।" मिठाई आ गई। हमीद ने कहा—"भाभी, केशव आज से तुम्हारा भाई। लो यह डोरा लो, उसे राखी बांधो।"

बहू के मलिन मुख पर एक चमक आई। उसने आगे बढ़कर केशव के हाथ में राखी बांध दी। हमीद ने रामकिशोर से कहा—"लाला इस पवित्र अवसर पर सबका मुंह मीठा कराओ और अपनी आत्मा की शुद्धि कर डालो।" लाला ने विवश ऐसा ही किया। परन्तु दादी मां ने मिठाई नहीं ली। वह बड़बड़ाती हुई वहां से चली गई।

हमीद ने उसका मार्ग रोककर कहा—"दादी मां, अब भाभी अपने भाई के घर है, यह ध्यान रखना।"

केशव की माता की आंखों में प्रेम के आंसू छलक आए। वह दौड़कर कोठरी में भगवान के समक्ष माला लेकर बैठ गई।

## 5. कांग्रेस

सन् 1857 के विद्रोह की समाप्ति के बाद भारतीय जनता में असमानता, ऊंच-नीच, घृणा और संदेह की भावना बढ़ने लगी थी, इन्हीं कारणों से आगे चलकर कांग्रेस का जन्म हुआ। यद्यपि महारानी विक्टोरिया ने अपनी 1858 की घोषणा में यह प्रकट किया था कि भारतवासी भी समान दृष्टि से देखे जायेंगे, किसी के साथ भेद-भाव नहीं किया जायगा, परन्तु भारत में निवास करने वाले अंग्रेज स्वयं को शासक और भारतीयों को अपनी प्रजा समझते थे। इस भेद-भाव की हीनता ने उन उदीयमान शिक्षित युवकों को आहत किया, जो बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में हाल ही में स्थापित यूनिवर्सिटियों में पढ़कर अपने ज्ञान का विकास कर रहे थे। ग्रामनिवासी तथा शहरों में बसे व्यापारियों की अपेक्षा अंग्रेजी पढ़नेवाले शिक्षित युवक राजनीतिक गतिविधियों में उग्र विचारधारा के थे। परन्तु लन्दन

की ब्रिटिश सरकार भारत के इन युवकों और भारत में निवास करनेवाले अंग्रेजों के बीच की दीवार को नहीं समझ रही थी। इसीलिए ब्रिटिश सरकार, इस शिक्षित पीढ़ी का जो सुधार भारत में कर रही थी, उसमें पूरा सहयोग उनका नहीं था।

ब्रिटिश सरकार हक्की-वक्की रह गई जबकि एक भारतीय युवक सत्येन्द्रनाथ ठाकुर ने 1864 में भारतीय सिविल सर्विस परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया। 1853 से चले आ रहे इस नियम की प्रतिष्ठा, कि हर मेजेस्टी के स्वजातीय ही इस परीक्षा में पास होकर प्रशासन विभाग में नौकरी करें, इस भारतीय युवक ने भंग कर दी। इसी युवक की सफलता के कारण 1870 से भारत सरकार द्वारा आई० सी० एस० की नौकरियों में पांचवां अंश भारतीयों के लिए सुरक्षित रखा जाने लगा।

1772 ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने न्याय-विभाग अपने हाथ में लिया। वादी को अपना मुकदमा स्वयं अथवा अपने नियुक्त वकील द्वारा पेश करने का अधिकार था। ये वकील वादी के निजी सेवक अथवा आश्रित जन होते थे। परन्तु आगे चलकर इनकी एक पृथक् व्यावसायिक श्रेणी बन गई और वे विभिन्न कचहरियों में भी मुकदमे लड़ने लगे। 1793 में इन वकीलों के लिए योग्यताएं निर्धारित की गईं। कलकत्ते के मुस्लिम कॉलेज और बनारस के हिन्दू कॉलेज के योग्य विद्यार्थी वकालत करने के लिए चुने जाते थे। यदि इन कॉलेजों से पर्याप्त विद्यार्थी नहीं मिलते, तब सदर दीवानी अदालत अच्छे आचरण और अच्छी शिक्षा प्राप्त हिन्दू अथवा मुसलमान योग्य व्यक्तियों को स्वीकार कर सकती थी। इन वकीलों को सदर दीवानी अदालत की मोहर लगी सनद कोर्ट के रजिस्ट्रार से मिलती थी। वहां इन्हें शपथ भी दिलाई जाती थी। मुस्लिम वकीलों को यह शपथ प्रत्येक छः महीने बाद भी दिलाई जाती थी। वादी अपना केस लड़ने की फीस वकील को चार आने देता था। वकील एक ही कोर्ट में रहकर केस लड़ते थे, दूसरे कोर्ट में जाने की आज्ञा उन्हें नहीं होती थी। जो वकील मुकदमे बाजी को प्रोत्साहन देने के अपराध में दण्डित किए जाते थे, उनको फिर वकालत करने से रोक दिया जाता था। अस्वस्थता के कारण न आने की सूचना उन्हें कोर्ट में देनी होती थी। मुकदमे की पुकार होने पर यदि सम्बन्धित वकील अनुपस्थित होता तो प्रथम बार पचास रुपये, दूसरी अनुपस्थिति पर

सौ रुपया और तीसरी अनुपस्थिति पर उसे वकालत के पेशे से बरखास्तगी की सजा मिलती थी।

22 अक्तूबर, 1774 को जब कलकत्ते में प्रथम बार सुप्रीमकोर्ट बैठा तब केवल एक बैरिस्टर मि० थॉमस फेरट ही उस कोर्ट के लिए भरती हुए। 1774 के अन्त में दो और आए—ब्रिक्स और न्यूमैन। 1775 में दो और आए। बाद में एन्थॉनी फे और थॉमस डेविस भी भरती हुए। परन्तु थामस इंग्लैंड से हिज मेजेस्टी की बिना आज्ञा आए थे, अतः उन्हें लौट जाने का हुक्म हुआ। उन दिनों अच्छे वकीलों की कमी थी।

जस्टिस हाइड ने 12 जनवरी, 1782 की अपनी डायरी में लिखा है कि एक मुकदमे (वाइसराय बनाम हिके) में प्रतिवादी हिके ने अपने आवेदन-पत्र में लिखा कि उसे अपने मुकदमे के लिए सुयोग्य वकील प्राप्त करना असम्भव हो गया।

अंग्रेज बैरिस्टरों की फीस लम्बी होती थी। वे लन्दन से खाली हाथ आते थे और भारत में रहकर लौटते समय मालामाल होकर जाते थे। भारत में वे अपनी फीस चांदी के सिक्कों में नहीं, सोने के सिक्के, अशर्फियों अथवा गिन्नियों में लेते थे। साधारण पेशी के लिए उनकी फीस 50 अशर्फी होती भी। मि० फैरर, जिन्होंने महाराज नन्दकुमार का केस लड़ा था, कुछ ही वर्ष भारत में रहे थे, परन्तु स्वदेश लौटते समय साठ हजार पौंड कमाकर ले गए थे। उस समय एडवोकेट-जनरल नहीं होते थे, परन्तु बाद में उनकी आवश्यकता समझी गई। लन्दन के एक बैरिस्टर जॉन डे को प्रथम एडवोकेट-जनरल बनाने की बात सोची गई। भारत में इस पद पर भेजने से पहले उन्हें 'नाइटहुड' प्रदान करना आवश्यक समझा गया। किंग जॉर्ज तृतीय ने नाइटहुड प्रदान करते समय डे से कहा—"मुझे मि० डे (दिन) को नाइट (रात) बनाते समय बहुत प्रसन्नता है।"

1825 में जब प्रथम बार मि० लौंग्वेविले द्वारा बार-लाइब्रेरी क्लब की स्थापना हुई, तब केवल दस बैरिस्टर प्रैक्टिस करते थे। कलकत्ता हाई-कोर्ट के प्रख्यात भारतीय वकीलों में लार्ड सिन्हा, सी० आर० दास और सर रासबिहारी घोष थे। लार्ड सिन्हा, प्रथम भारतीय वकील थे, जिन्हें बंगाल का एडवोकेट-जनरल बनाया गया था। वे 1909 से 1910 तक वाइसराय की कौन्सिल के ला मेम्बर रहे, 1914 में उन्हें नाइट बनाया

गया, 1918 में वे के० सी० का खिताब पानेवाले प्रथम भारतीय थे। 1919 में लायड जार्ज की मिनिस्ट्री में वे अण्डर सेक्रेटरी आफ स्टेट बनाए गए। वे प्रिवी कौन्सिल के सदस्य और बिहार-उड़ीसा के प्रथम भारतीय गवर्नर भी थे। सी० आर० दास की ख्याति अरविन्द घोष की पैरवी के कारण चरम सीमा पर पहुंच गई। बाद में ढाका षड्यन्त्र केस की पैरवी की, जिसका लोहा सर लारेन्स जेन्किन्स ने मानकर 'म्यूनिशन केस' में इन्हें क्राऊन-काउसल नियत किया।

1880 में जब लार्ड रिपन भारत के वाइसराय बने, उस समय भारत में बसे अंग्रेज उद्विग्न-से थे। रिपन को सुझाया गया कि भारतीयों को आई० सी० एस० परीक्षा में न बैठने दिया जाय और जो भारतीय आई० सी० एस० नौकरी में हैं, उन्हें कुछ मुआवजा देकर नौकरी से हटा दिया जाय। परन्तु रिपन ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। आगे चलकर उसे अपने देशवासियों के समक्ष भारतीय अफसरों की उच्च योग्यताएं प्रमाणित करने में बहुत परिश्रम करना पड़ा। रिपन के इस कार्य से भारत में नियुक्त आई० सी० एस० अंग्रेजों को बहुत दुःख हुआ।

यह संघर्ष 1882 में और भी बढ़ा जबकि कलकत्ता हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस सर रिचार्ड गर्थ ने दो मास की छुट्टी ली। नियमानुसार उनके स्थान पर उस समय सबसे सीनियर जज एक भारतीय रमेशचन्द्र मित्र को उस स्थान पर नियुक्त किया जाना था। लार्ड रिपन ने बंगाल के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर से सलाह की और अपना मन्तव्य भी प्रकट किया। लेफ्टिनेन्ट गवर्नर ने भी देखा कि नियमानुसार रमेशचन्द्र मित्र ही वह कुर्सी ग्रहण करने के अधिकारी हैं, परन्तु उन्हें भय था कि ऐसा निर्णय प्रकट होते ही कलकत्ते में बसे अंग्रेज इसे अपना अपमान समझेंगे। उन्होंने रिपन से कहा —कि यद्यपि मिस्टर मित्र अच्छे दीवानी जज हैं, परन्तु उन्हें फौजदारी केसों का अनुभव नहीं है, अतः दूसरे सीनियर जज जस्टिस कनिंघम को वह कुर्सी दी जाय। परन्तु जब सर रिचार्ड को यह ज्ञात हुआ कि मिस्टर मित्र उनके स्थानापन्न होने वाले है वो वे स्तम्भित रह गये और उन्होंने वाइस-राय को लिखा कि वे अपनी कुर्सी पर एक भारतीय को बैठे देखने की अपेक्षा अपनी छुट्टियां रद्द करना पसन्द करेंगे। फिर भी लार्ड रिपन ने इन बातों की परवाह न की और 1882 में इतिहास में प्रथम बार कलकत्ता हाई-

कोर्ट के चीफ जस्टिस की कुर्सी पर भारतीय जज मिस्टर मित्र आसीन हुए।

एक भारतीय सिविल अधिकारी बिहारीलाल गुप्त ने बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर ऐशले ईडन को फौजदारी कानून संविधान विषयक एक गम्भीर प्रपत्र भेजा। इस प्रपत्र से अंग्रेजों और भारतीयों के बीच एक 'श्वेत संघर्ष' छिड़ गया। यह 'श्वेत संघर्ष' बहुत जटिल होता गया। 1857 से पहले ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधीन भारतीय प्रान्तों में कानून और न्याय की दो पृथक्-पृथक् पद्धतियां थीं। पहला मुस्लिम ला मुगल बादशाहों पर आधारित था, जिसका कम्पनी की अदालतों द्वारा देहाती क्षेत्रों में व्यवहार किया जाता था। दूसरा इंग्लिश ला था, जो प्रेसीडेन्सी के शहरों में हाईकोर्टों द्वारा व्यवहार किया जाता था। लार्ड डलहौजी और उसके पूर्ववर्ती शासकों ने अनुभव किया कि अंग्रेजों पर मुस्लिम ला लागू नहीं होना चाहिए। इसलिए कोई भारतीय जज, प्रेसीडेन्सी के शहरों को छोड़, क्रिमिनल अंग्रेज अपराधी का विचार नहीं कर सकता। परन्तु वे (भारतीय जज) सभी यूरोपीय अंग्रेजों के दीवानी केसों पर विचार कर सकते थे। 1861 में इंडियन पिनल कोड ने देश को समान क्रिमिनल ला दिया और इसी वर्ष देश में हाईकोर्ट स्थापित हुए। इस कानूनी सुधार से भारतीय और अंग्रेज जजों के अधिकार समान होने चाहिए थे पर ऐसा नहीं हुआ। आरंभ में मुफस्सिल जिलों में जब अंग्रेजों की संख्या कम थी, यह असमानता चलती रही, परन्तु आगे चलकर जब उनकी संख्या अधिक हुई, तब अंग्रेज क्रिमिनल अपराधियों के निर्णयों को टाला और इंकार किया जाता रहा। मिस्टर बिहारीलाल गुप्त ने, जो कलकत्ते के प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट थे, सर ऐसले ईडन को वह मेमोरेंडम भेजकर न्याय-करण अधिकारों में यह नियम-विरुद्धता हटाने की मांग की। गुप्त ने यह भी कहा कि मैं प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट के पद पर जिन न्याय-अधिकारों का प्रयोग करता था, वे अधिकार भी अब मेरी पदोन्नति होने पर मुझसे छीन लिये गए हैं। भारतीय जजों की उच्च स्थिति को समझकर सर ऐशले ने प्रान्तीय सरकार से इस नियम-विरुद्धता को हटाने के बारे में राय मांगी। वाइसराय की एग्जिक्यूटिव कौन्सिल के सिविलियन मेम्बरों ने इसका विरोध किया, परन्तु बंगाल, बम्बई, मद्रास और उत्तर-पश्चिम सीमा प्रदेश के गवर्नरों, भारत के कमान्डर-इन-चीफ, मध्यप्रदेश, ब्रिटिश बर्मा, आसाम के चीफ कमिश्नरों एवं

हैदराबाद के रेजिडेन्ट ने भारतीय जजों के जूडिशियल अधिकारों को बढ़ाने के सरकारी सुझाव पर सहमति प्रकट की। कुर्ग के चीफ कमिश्नर ने राजनैतिक कारणों से विरोध किया, परन्तु किसी ने भी गैरसरकारी अंग्रेजों की प्रतिक्रिया पर विचार नहीं किया।

वाइसराय इसे कानून का साधारण संशोधन-मात्र समझकर इस मामले को लेकर आगे बढ़े। 1882 के अक्तूबर में वाइसराय और उसकी एग्जिक्यूटिव कौन्सिल का निश्चय सेक्रेटरी ऑफ स्टेट और उसकी कौंसिल के पास सम्मति और स्वीकृति प्राप्त करने के लिए लन्दन भेज दिया गया। सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के कानूनी सलाहकार मोने इस समय पेरिस में थे। वहीं उन्हें कागजात भेज दिये गये। मोने ने इस पर सहमति तो दे दी, परन्तु उन्होंने वाइसराय को निजी सुझाव दिया कि ऐसा कर देने से भारत में बसे अंग्रेज नाराज होकर उपद्रव खड़ा कर सकते हैं, अतः उनसे भी इस विजय में राय ले लेनी चाहिए। मोने का यह निजी सुझाव कौन्सिल के दूसरे सदस्य हटिंग्टन को वाइसराय के पास गुप्त रूप से भेजने के लिए दिया गया, परन्तु हटिंग्टन वह पत्र अपनी जेब में ही डाले पड़े रहे और लन्दन में घर जाकर भूल गए। इसी भूल ने आगे चलकर भारतीय साम्राज्य की जड़ को हिला दिया।

वाइसराय को सेक्रेटरी ऑफ स्टेट से तत्सम्बन्धी कागजात मिले, परन्तु उन्हें भारत में बसे अंग्रेजों की भी राय जाननेवाला वह गुप्त पत्र नहीं मिला, अतः उन्होंने अपनी एग्जिक्यूटिव कौन्सिल के लॉ मेम्बर सर कॉर्टने अलबर्ट से इस सम्बन्ध में आगे कार्यवाही करने के लिए कहा। 2 फरवरी, 1883 को कॉर्टने ने इसे 'अलबर्ट बिल' के नाम से कौन्सिल में भारतीय मजिस्ट्रेटों को अधिक जुडीशियल अधिकार देने के लिए पेश कर दिया। 1861 के ऐक्ट के अनुसार केवल 'जस्टिस ऑफ पीस' ही भारत में बसे अंग्रेजों पर चलाये गए क्रिमिनल केसों की सुनवाई कर सकते थे, परंतु अब इस बिल का उद्देश्य यह था कि भारतीय भी 'जस्टिस ऑफ पीस' बन सकें। 'अलबर्ट बिल' के प्रकाशित होते ही यूरोपीय लोगों में क्रोध फैल गया। कलक़त्ता के टाउन हॉल में लगभग तीन हजार यूरोपियनों ने एकत्रित होकर मीटिंग में गरमा-गरम भाषण दिये। उनके एक नेता ब्रन्सन ने चीखकर कहा कि यह बिल कुछ खुशामदी बाबुओं के कहने से हमें अप-

मानित करने के लिए पास किया जा रहा है। उसने प्रतिज्ञा की कि जो हो, मैं कभी किसी काले आदमी को अपने ऊपर न्याय की कुर्सी पर नहीं बैठने दूंगा। उसने यह प्रस्ताव भी किया कि सब आदमी जुलूस बनाकर गवर्नमेंट हाउस अपना विरोध प्रकट करने चलें। परन्तु फिर कुछ सोचकर यह विचार त्याग दिया गया। भारत के अन्य स्थानों में भी यूरोपीय क्लबों और एसोसिएशनों में ऐसा ही विरोध प्रकट किया गया। चाय बागानों के स्वामी यूरोपीय वर्ग ने इस बिल का अधिक विरोध किया। हजारों भारतीय मजदूर उनके चाय बागानों में कार्य करते थे और बागानों के स्वामियों के खिलाफ मजदूरों पर अत्याचार करने के उनके केस आया करते थे। इन यूरोपीय अपराधियों को अंग्रेज द्वारा बहुत साधारण सजा दी जाती थी। परन्तु अब यदि 'अॅलबर्ट बिल' पास हो जाता है, तब उन्हें भारतीय न्यायाधीशों के सामने पेश होना पड़ेगा, जो कभी भी उनके अपराधों को हलकी नजर से नहीं देखेंगे।

वाइसराय के सामने अयाचित यह 'यूरोपीय विद्रोह' उठ खड़ा हुआ। अमृतबाजार पत्रिका ने 1 मार्च, 1883 के अंक में लिखा—'शासकवर्गीय जाति एक भारतीय न्यायाधीश से अपना केस कराने में विरोध कर सकती है, परन्तु एक अंग्रेज जालसाज और एक भारतीय जालसाज को समान रूप से क्यों न दण्ड दिया जाय ?'

बम्बई, मद्रास और कलकत्ता—जैसे बड़े शहरों में इस 'यूरोपीय विद्रोह, के विरुद्ध भारतीयों की भी मीटिंग्स होने लगीं। दादाभाई नौरोजी तथा फीरोजशाह मेहता ने बिल के समर्थन में इन मीटिंग्स में भाषण दिए। कलकत्ते में भारतीय वकीलों ने अंग्रेज बैरिस्टरों से अपने केस वापस लेने शुरू कर दिए। भारतीय मिलकर वाइसराय का समर्थन करने लगे।

कलकत्ते में 'यूरोपीय एवं ऐंग्लो-इंडियन डिफेन्स एसोसिएशन' बनी और चीफ जस्टिस की पत्नी लेडी गर्थ ने बिल के विरोध में हजारों यूरोपीय एवं ऐंग्लो-इंडियन स्त्रियों के हस्ताक्षर एक आवेदनपत्र पर एकत्रित किये। आसाम के अंग्रेज बागान-स्वामियों ने तो यहां तक कह दिया कि यदि कोई भारतीय न्यायाधीश किसी अंग्रेज अपराधी के केस पर विचार करने के लिए न्यायाधीश की कुर्सी पर बैठने का साहस करेगा तो हम उसे मार-पीटकर ठीक कर देंगे।

इंग्लैंड में जनमत को उत्तेजित करने के लिए, आसाम की सुनसान घाटियों में बसे चाय बागान के अंग्रेज परिवारों पर भारतीयों द्वारा किए गये अत्याचारों की असत्य और कल्पित कहानियां फैल गई। एक अंग्रेज एटकिन्स को रुपया देकर इंग्लैंड भेजा गया, जो वहां के मजदूर वर्ग को इस बिल के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए खड़ा करे। परन्तु एटकिन्स को इस मिशन में सफलता नहीं मिली। एडिनबर्ग में उसी के द्वारा आयोजित एक भारी सभा में उसी के विपरीत एक प्रस्ताव पास हुआ।

कलकत्ता में यह संघर्ष सबसे तीव्र था। 1 दिसम्बर 1883 को लॉर्ड रिपन शिमला से कलकत्ता बड़ा दिन मनाने पहुंचे। 'यूरोपीय एवं ऐंग्लो-इंडियन डिफेन्स ऐसोसिएशन' ने हजारों यूरोपियनों की भीड़ एकत्र कर गवर्नमेंट हाउस के सामने जबरदस्त प्रदर्शन किया। जब वाइसराय की गाड़ी पास आई तब लार्ड रिपन उन खड़े हुए यूरोपियनों का झुक-झुककर अभिवादन करने लगे। परन्तु उन्हें शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि यह भीड़ मेरे मेजबानों की नहीं; विरोध-प्रदर्शनकारियों की है। भीड़ ने अपने नेता का संकेत पाते ही लार्ड रिपन को धिक्कारना और उनका मजाक उड़ाना आरम्भ कर दिया।

गैर-सरकारी यूरोपियन लोगों ने भी वाइसराय के वार्षिक भोज का बहिष्कार किया। इंडियन आर्मी की वार्षिक परेड में भी केवल बीस ब्रिटिश वालन्टियर्स सम्मिलित हुए। थोड़े-से मेहमान आये, वाइसराय की स्वास्थ्य-कामना का टोस्ट प्रस्तुत किया, परन्तु हास्य और आनन्द से शून्य। सेंट एन्ड्रू-दिवस-समारोह के अवसर पर भी उदासी छायी रही।

परन्तु वाइसराय शिक्षित भारतीयों के व्यवहार से प्रभावित हो चुके थे। उन्होंने अपने सजातीय बन्धुओं के इस प्रदर्शन की उपेक्षा कर दी। अब डिफेन्स एसोसिएशन ने और भी उग्र संघर्ष करने की योजना बनाई। उन्होंने आस-पास के इलाकों से और भी अधिक स्वजन एकत्रित किए। यह योजना बनाई गई कि गवर्नमेंट हाउस के सन्तरियों को बांध लिया जाए और हाउस में घुसकर वाइसराय को गिरफ्तार कर चपलघाट से स्टीमर में बैठाकर केप ऑफ गुड होप के मार्ग से इंग्लैंड भेज दिया जाय। आसाम चाय बागान के मालिकों द्वारा वाइसराय को, जो उस अवसर पर उनके प्रान्त में शिकार खेलने जानेवाले थे, उड़ाने की एक पृथक् योजना

भी थी। परन्तु वाइसराय को इस षड्यंत्र का पता चल गया और वे आसाम नहीं गये, अपने पुत्र को भेज दिया। वाइसराय इस आन्दोलन और अपने उड़ाये जाने के षड्यंत्रों से गहरी चिंता में पड़ गये। 1883 में सारे भारत में 55,760 सैनिकों सहित 89,798 अंग्रेज थे। अकेले कलकत्ते में 7,000 अंग्रेज थे और इन सबके कलकत्ते में संगठित होकर भारतीयों के विरुद्ध सामूहिक संघर्ष छेड़ देने की भी सम्भावना थी। उस समय कलकत्ते में 70 पुलिसमैन अंग्रेज थे। इन मुट्ठी-भर सिपाहियों की सहायता के लिए अंग्रेज पल्टन बाहर से बुलानी पड़ सकती थी, जिसके कारण स्थिति और भी विस्फोटक हो सकती थी।

इंग्लैंड में अंग्रेजी सरकार वाइसराय का पूरा समर्थन कर रही थी। परन्तु भारत में केवल एक अंग्रेज सर अलबर्ट ने ही कौन्सिल के अन्तिम भाषण में इस बिल का समर्थन किया। संघर्ष के नेता इवान्स ने कहा कि यदि लॉर्ड रिपन अपनी जिद पर न अड़ें तो हम अपना संघर्ष समाप्त कर देंगे। अन्त में लॉर्ड रिपन ने अपनी कौन्सिल के अर्थ-सदस्य काल्विन को इवान्स के साथ इस बिल का निर्णय करने का भार सौंपा। 26 जनवरी, 1884 को एक बिल काल्विन-इवान्स की वार्ता के आधार पर बनाया गया। इसके अनुसार जब कोई यूरोपियन अभियुक्त किसी डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट या सेशन जज, भारतीय अथवा अंग्रेज के समक्ष पेश हो, तो उसे यह अधिकार दिया गया कि वह अपना केस 12 जूरियों द्वारा करा सकेगा। इनमें से 7 जूरी यूरोपीय ब्रिटिश जन होंगे। यदि मुफस्सिल जिलों में जूरी न बन सके तो मजिस्ट्रेट उनके केसों को हाईकोर्ट द्वारा निर्देशित कोर्ट में भेज देंगे। इस बिल ने उद्ग्रीव भारतीयों को जाग्रत कर दिया और उन्होंने इसमें छिपी हीनता को पहचान लिया। उन्होंने संगठित होकर ऐसी यूरोपीय उच्चता के विरुद्ध आवाज उठाने का प्रयत्न किया। 1883 में कलकत्ते के अलबर्ट हॉल में एक राजनैतिक परिषद् बुलाई गई, जिसमें सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और आनन्द-मोहन बसु भी उपस्थित थे। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और राजा राममोहन राय ही उन दिनों के सुधारक नेता थे, जिन्होंने देश-प्रेम और उच्च शिक्षा की ओर से निराश भारतीयों में जागृति उत्पन्न की। 1857 के केवल 25 वर्ष बाद ही उन्होंने भारतवासियों के मन का भय दूर कर उन्हें अंग्रेजों के बराबर कुर्सी पर बैठने के योग्य बनाया। सुरेन्द्र-

ने श्री उमेशचन्द्र बनर्जी के सभापतित्व का प्रस्ताव पेश किया, जिसका अनुमोदन एस० सुब्रह्मण्य अय्यर और श्री काशीनाथ त्रयम्बक तैलंग ने किया। भारत के इतिहास में यह ऐतिहासिक क्षण था जिसमें स्वदेश के बारे में राजनैतिक विचार संगठित रूप से व्यक्त किए गए। आगे चलकर अगस्त 1920 में तिलक की मृत्यु होने पर इसी कांग्रेस की बागडोर महात्मा गांधी ने संभाली और 15 अगस्त, 1947 को अंग्रेजों को भारत त्यागकर शासन इसी 62 वर्षीय बूढ़ी कांग्रेस को सौंपना पड़ा।

## 6. अप्रतिम

अगस्त 1916 की एक शोभनीय संध्या को बम्बई की सड़क पर दो घोड़ोंवाली एक सुन्दर फिटन गाड़ी शाही ढंग से चली जा रही थी। उन दिनों मोटरें बहुत कम थीं और सम्भ्रान्त परिवार के व्यक्ति इसी सवारी को अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप समझते थे। फिटन के आगे-पीछे वर्दीधारी चोबदार दौड़ रहे थे। फिटन 'बम्बई प्रेसीडेंसी एसोसिएशन' के मुख्य द्वार पर आकर रुकी और उसमें से बम्बई के प्रख्यात नेता और रईस पारसी-शिरोमणि सर दिनशा पेटिट उतरे। उनके पीछे उतरी एक अत्यन्त सुकुमार अपूर्व सुन्दरी और गरिमापूर्ण षोड़शी बाला जो उनकी प्रिय पुत्री रतन थी। इस समय यहां पर एसोसिएशन की एक आवश्यक मीटिंग का आयोजन था। जिसका सभापतित्व सर पेटिट करनेवाले थे। मीटिंग-हॉल शहर के सम्भ्रान्त व्यक्तियों से खचाखच भरा हुआ था। पर पेटिट के हाल में प्रवेश करते ही उपस्थित जनों ने खड़े होकर उनका अभिवादन किया। अभिवादन को स्वीकार कर सर पेटिट आगे बढ़कर अध्यक्षीय आसन पर आसीन हो गए, परन्तु उनकी पुत्री श्रोताओं की प्रथम पंक्ति की ओर बढ़कर एनी बीसेन्ट की बगल में एक कुर्सी पर बैठ गई।

मीटिंग की कार्यवाही आरम्भ हुई, दो-तीन सदस्यों के भाषण हुए, परन्तु रतन का ध्यान वक्ताओं की ओर न था। वह अत्यन्त श्रद्धाभाव से एनी बीसेन्ट की भव्यता को देख रही थी। उनके मुख पर थियोसोफिस्ट ब्रह्मविद्या का तेज अनायास ही दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करता था। वह गौरांग नारी संगमरमर की निश्चल मूर्ति की भांति अपने अध्यात्म

ज्ञान की दीप्ति से स्वतः ही एक ध्यानावस्थित देव-प्रतिमा के समान सुशोभित थी। रतन उसी दीप्ति से प्रभावित हो उनके सम्बन्ध में सोच रही थी। कुछ और भाषण हुए, हठात् उसका ध्यान एक प्रवाही विशिष्ट अंग्रेजी शैली की ओर आकर्षित हुआ। उसने देखा कि एक प्रौढ़ युवक नपी-तुली बातों को इस भांति धारावेग से प्रवाहित कर रहा है, जो श्रोताओं के मस्तिष्क में घुसी चली जा रही हैं। उसका वाक्चातुर्य, अकाट्य प्रमाण, पाण्डित्यपूर्ण सन्दर्भ एक के बाद एक इस प्रकार मुख से निकलने जा रहे हैं, मानों यह उसका एक खेलमात्र है। उसके भाषण पर सारा हाल स्तब्ध और अवाक् था। उसने अपनी विशिष्ट और पाण्डित्यपूर्ण वाणी से अपने श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया था। रतन की दृष्टि उस व्यक्ति पर जम गई। पैन्ट और काला कोट पहने, बालों को सुव्यवस्थित ढंग से काढ़े हुए, लम्बे छरहरे बदन का एक तेजस्वी व्यक्ति कानून की मर्यादा में भाषण दे रहा है। वह यद्यपि रंग-रूप से भारतीय है, परन्तु वेशभूषा में अंग्रेज है। कौन है यह अप्रतिम युवक। हां, युवक ही ! यद्यपि उसकी आयु चालीस को पार कर रही होगी, परन्तु उसका भाषण-प्रवाह, उसकी चेष्टाएं, उसका आकर्षण, उसका व्यवहार सभी बातें मर्यादा से ऊपर हैं, उसका यौवन अभी उसका साथी है। रतन ध्यान-मग्न हो उसे देख और सुन रही थी। भाषण समाप्ति के बाद जब हाल तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा, तब उसने भी हर्षविह्वल हो उसमें योग दिया। अब एनी बीसेन्ट ने अपनी गम्भीरता तोड़ी। उन्होंने प्यार से रतन का कन्धा थपथपाकर कहा—"जिन्ना एक विशिष्ट वक्ता है, क्या तुमने उसकी बातें समझीं ?"

"जिन्ना ? मिस्टर जिन्ना, बम्बई के प्रख्यात बैरिस्टर। ओह, निसन्देह वे वन्दनीय हैं।"

"आओ, उनसे मिलें।" कहकर एनी बीसेन्ट उठ खड़ी हुई। रतन भी उनके साथ उठ खड़ी हुई। मीटिंग समाप्त हो चुकी थी और लोग बिदा हो रहे थे।

एनी.बीसेन्ट को अपनी ओर आता देख जिन्ना ने आगे बढ़ कर झुककर अभिवादन किया। उनके साथ आई एक रूपसी बाला को देख वे कुछ प्रभावित हुए। वे उसके विषय में कुछ जानना ही चाहते थे कि सर पेटिट ने आगे बढ़कर उनसे कहा—"मिस्टर जिन्ना, यह मेरी पुत्री रतन हैं।"

जिन्ना ने खुश होकर कहा—"ओह, माई ब्लेसिंग्स टू द स्वीट गर्ल।"

"नमस्कार।" रतन ने मुस्कराकर उनका अभिवादन किया।

एनी बीसेन्ट ने हंसकर कहा—"मिस्टर जिन्ना, तुम रतन से हार गए। रतन ने तुम्हारे अंग्रेजी शिष्टाचार को स्वीकार नहीं किया। यही नहीं, उसने तुम्हें यह भी जता दिया कि भविष्य में वह नमस्कार सुनना पसन्द करेगी।" जिन्ना खिलखिलाकर हंस पड़े। उन्होंने कहा—"स्वीकार करता हूं।"

एनी बीसेन्ट ने रतन की दुविधा समझ ली। उन्होंने प्रसंग बदलते हुए रतन का कन्धा पकड़कर कहा—"गोखले जिन्ना को अपना अंश मानते हैं और उन्हें प्यार से मुस्लिम गोखले कहते हैं। जिन्ना की वक्तृत्व-शक्ति की प्रशंसा दादाभाई नौरोजी भी कर चुके हैं।"

सर पेटिट ने उनके भाषण पर जिन्ना को बधाई दी और अनुरोध किया कि वे घर चलकर उनके साथ डिनर लें।

जिन्ना कुछ कहने ही वाले थे कि रतन ने उनकी ओर अनुरोधपूर्ण दृष्टि डालकर कहा—"पिताजी ने मेरे मुंह की बात अनायास ही कह दी है। वे न भी कहते तो मैं आपको अभी आमन्त्रित करने वाली थी।"

जिन्ना इन्कार न कर सके। उन्होंने झुककर कहा—"मैं सर पेटिट की आज्ञा का पालन जरूर करूंगा।" सब लोग चल दिए। रतन ने एनी बीसेन्ट का हाथ पकड़कर कहा—"चलिए मदर।"

"हां, हां। चलिए आप भी।" सर पेटिट ने अनुरोध किया।

घोड़ागाड़ी उसी भांति बम्बई की सड़कों पर शान से उड़ी चली जा रही थी। अब उसमें चार महान् व्यक्ति बैठे थे। चारों का अपना-अपना व्यक्तित्व था।

## 7. मुख-सौन्दर्य

आगामी ग्रीष्म ऋतु में सर दिनशा पेटिट ने मिस्टर जिन्ना को अपने साथ दार्जिलिंग चलने का निमन्त्रण दिया। जिन्ना एक उद्ग्रीव व्यक्ति थे। वे गरीबी से धन-वैभव में आए थे। सन 1876 के क्रिसमस में रविवार के दिन करांची में ऊंटों की खाल बेचनेवाले एक साधारण खोजा मुस्लिम के

घर इस प्रतिभा-पुत्र ने ज्येष्ठ सन्तान के रूप में जन्म लिया। बालपन के खेल-कूद से उन्हें विरक्ति थी। अत: छठे वर्ष से विद्यारम्भ करके बीस वर्ष की आयु में इंग्लैंड से बैरिस्टरी पास करके वे 1896 में स्वदेश लौटे। जीवन यापन करने के लिए उन्हें तीन वर्ष तक संघर्ष करना पड़ा। इस कठोर परिश्रमी और उच्च अभिलाषी युवक ने बाधाओं को परास्त किया। उन दिनों वे कहा करते थे 'Failure is a word not known to me.' एक अस्थायी प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट के पद पर भी उन दिनों एक वर्ष तक कार्य किया था। जिन्ना गम्भीर और अपने कार्य में रत रहने वाले एकान्त प्रिय युवक थे। अतः गम्भीर अध्ययन में लगे रहने के कारण उनकी कानूनी बहस अकाट्य और तथ्यपूर्ण होती थी। इंग्लैंड से बैरिस्टरी पास करके वे भारत लौटे तो उन्होंने बम्बई हाईकोर्ट के एडवोकेट जनरल सर जार्ज लाण्डस के चेम्बर में केसों का अध्ययन किया। केस के सूक्ष्म तत्त्वों की खोज करने और अपनी युक्तियों को चातुर्यपूर्ण वाक्धारा के जरिये प्रकट करने के कारण वे शीघ्र ही प्रख्यात हो गए। तिलक और हार्नमैन पर चलाए गए राजद्रोह के केसों की पैरवी में किए गए इनके असाधारण तर्क, विचार और युक्तियों को सुनकर अंग्रेज जज दंग रह गए थे।

15 वर्ष की आयु में वे हाईस्कूल की परीक्षा समाप्त कर रहे थे, एक सात वर्षीय मुस्लिम बालिका से उनका विवाह हुआ। इसके कुछ मास बाद ही वे इंग्लैंड चले गए। परन्तु अगले वर्ष ही उस बालिका वधू का निधन हो गया। कुछ समय बाद माता भी मर गई और पिता की आर्थिक स्थिति अत्यन्त खराब हो गई। परन्तु जिन्ना ने अपने परिवार की अधिक चिन्ता नहीं की। वे अपने भाग्य के निर्माण में जुट गए और शीघ्र ही उच्च कोटि के वकीलों में गिने जाने लगे। उन पर धन की वर्षा होने लगी। बम्बई में समुद्र-तट के निकट माउंट प्लीजेन्ट रोड पर उन्होंने एक सुन्दर बंगला खरीदा और उसमें रहने लगे। परिवार के लोगों में से केवल अपनी बहन फातिमा जिन्ना को, जो केवल डेन्टिस्ट बन सकी, बुलाकर अपने पास रखा जो जीवन-पर्यन्त उनके साथ रही।

गोखले के मधुर और प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व से जिन्ना इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने गोखले को अपना राजनैतिक गुरु मानकर उनका अनुयायी बनना स्वीकार किया। मैनचेस्टर गार्जियन के प्रतिनिधि मि० वालकेर

ने 1917 में भारत का दौरा करके यह लिखा था कि तिलक और एनी बीसेन्ट के बाद जिन्ना उनके कार्य को पूर्ण करने की क्षमता रखते हैं। ऐसे उद्ग्रीव, मेधावी और पाश्चात्य संस्कृति में निखरे हुए एक वाक्शास्त्री का सान्निध्य सर पेटिट के मानसिक विनोद के लिए अच्छा साधन था। जिन्ना भी रतन की प्रतिभा से आकर्षित हो रहे थे। अतः उन्होंने दार्जिलिंग का उनका यह निमंत्रण स्वीकार कर लिया और वे पेटिट-परिवार के साथ वहां चले गए। बम्बई की व्यस्त जिन्दगी से दूर बहुत दूर हिमालय की पर्वत श्रेणी के शान्त आंचल में आकर सर पेटिट को जिन्ना से कितनी वाक् उपलब्धि हुई, यह तो हम नहीं जानते, परन्तु रतन को वांछित उपलब्धि अवश्य हुई।

मौसम आकर्षक था। बादल छितरा रहे थे। आकाश का दृश्य बदल रहा था। कभी अन्धकार, कभी प्रकाश, कभी बिजली की चमक, और दूर चाय-बागानों की घाटियों में लहराती आनन्दमयी हरियाली। जिन्ना और रतन बातें करते-करते अपने कालेज के पिछवाड़े फूलों की क्यारियों में निकल आए थे। वार्तालाप अंग्रेजी भाषा में चल रहा था। पहाड़ी झाड़ियों में रंग-बिरंगे फूल खिले हुए थे। कहीं-कहीं फूलों के गुच्छे-के-गुच्छे फैले हुए थे और वह पर्वतीय भूमि स्वर्गोपम शोभा का विस्तार कर रही थी। फूलों के इस विस्तृत सौन्दर्य से आह्लादित होकर रतन ने जिन्ना से प्रश्न किया—"आप कौन-सा फूल पसन्द करते हैं?"

"जो सबसे अधिक सुन्दर हो।"

"बस?"

जिन्ना ने हंसकर कहा—"उसमें सुगन्ध भी मनमोहक हो।"

"बस!"

"और तुम?"

"जो भारतीय भी हो।"

जिन्ना ने रतन के भारतीय श्वेत-परिधान पर एक नजर डालकर कहा—"ओह, तुम ठीक कहती हो। पर देखता हूं, तुम्हारे बम्बई के बगीचे में विलायती फूलों की भी भरमार है।"

रतन ने व्यंग्य से मुस्कराकर कहा—"और भारतीय फूल बहुत कम हैं। यही न?"

"मैंने गिने तो नहीं।"

"गिनिए—गुलाब, बेला, चमेली, चम्पा, मालती, सूरजमुखी, मोगरा मौलसिरी।"

"और विलायती?"

"उन्हें आप कहां तक गिन सकते हैं। बहुत हैं।"

"चाहे जो हो, तुम्हारी पसन्द और सुरुचि की मैं दाद देता हूं।"

"मेरी क्यों? पिताजी की कहिए। विलायती फूलों का उन्हें बहुत शौक है। बड़े-बड़े कीमती फूलों के पौधे मंगाए हैं और उनके अनुकूल कृत्रिम जलवायु बनाने में काफी खर्च करते हैं।"

एक क्यारी में विभिन्न रंगों के गुलाब देखकर जिन्ना ने कहा—"वह सुर्ख गुलाब और सफेद गुलाब साथ-साथ क्यारियों में क्या बहार दे रहे हैं!" रतन ने मुस्कराकर कहा—"बड़ी पैनी नजर है आपकी।"

"धृष्टता न समझी जाय तो कहूं—कि ऐसा प्रतीत होता है जैसे धवल श्वेत-परिधान पर लाल जड़ा हो। गुलाब के लिए ठीक ही कहा गया है—हाइड मी इन ए श्राइन ऑफ रोजेज, ड्राउन मी इन ए ग्राइन आफ रोजेज, ड्राउन फ्राम एव्री फ्रेगरन्ट ग्रोव, बाइंड मी आन ए पाइर आफ रोजेज क्राउन मी विद द रोजेज आफ लव।

"वाह, आप शायद कवि हैं?"

"खेद है, कवि नहीं हूं। कवि होता तो इन फूलों पर एक सुन्दर कविता रचता। ये पंक्तियां सरोजिनी की हैं।"

"किन्तु अब?"

"केवल इतना अनुग्रह चाहता हूं कि वह लाल गुलाब की अनखिली कली मैं तोड़ लूं?"

रतन ने हंसकर कहा—"तोड़ने की आज्ञा मैं नहीं दे सकती, परन्तु आप लेना चाहें तो ले सकते हैं।"

"किस तरह?"

रतन ने आगे बढ़कर कली तोड़ ली और जिन्ना के बटन में लगा दी। फिर कुछ लजाते और मुस्कराते हुए कहा—"इस तरह।"

"वाह, तुम्हारा मुंह तो अनखिली कली की भांति लाल हो गया।"

"शायद आपकी आंखों में इसका रंग छा गया है।"

जिन्ना ने हंसकर कहा—"शायद तुमने ठीक कहा। किन्तु झूठ तो मैंने भी नहीं कहा?"

रतन ने तिरछी नजर से देख पूछा—"क्या कहा?"

"खैर, जाने दो उस बात को। क्या तुम एक बात बता सकती हो?"

"पूछिए।"

"तो इस बैंच पर बैठो।"

"आइए।" कहकर रतन बैठ गई, पर जिन्ना नहीं बैठे।

उन्होंने बैंच पर एक पैर रख और घुटनों पर कुहनी टेककर एक दार्शनिक की भांति कहा—"क्या कारण है कि कविगण फूल से मुख के सौंदर्य की तुलना करते हैं—मुख से फूल की तुलना नहीं करते? क्या यह मान लिया जाय कि फूल मुख की अपेक्षा अधिक सुन्दर है?

"नहीं, फूल मुख की अपेक्षा अधिक सुन्दर नहीं है। फूल में तो केवल आकृति की ही सुन्दरता है, परन्तु मुख में चेतना की चमक है, बुद्धि की स्फूर्ति है, हृदय के भावों का प्रतिबिम्ब है।"

"ठीक कहा तुमने मिस रतन। फूल को देखकर हमारे मन के उतने बड़े भाग पर अधिकार नहीं होता, जितना मुख को देखकर।"

"यही तो वात है। मन की भी तो कई परतें हैं। फिर विचार, बुद्धि और हृदय की तरंगों का भी उस पर प्रभाव पड़ता है, धर्म बुद्धि भी उसमें कुछ मिल जाती है। इसीसे उपमा-उपमेय का ठीक संतुलन हो जाता है। मुख की उपमा चाहे फूल से दी जाय, चाहे चन्द्रमा से, सारी ही उपमा एकांगी ठहरती हैं। उनमें मुख की सर्वांग सुन्दरता नहीं—एकांगी सुन्दरता ही होती है। इसीसे मुख ही श्रेष्ठ है। फूल से उसकी उपमा देने पर भी फूल उसकी समता में नगण्य है।"

"तो तुम यह कहना चाहती हो कि सौन्दर्य केवल आंखों से ही नहीं देखा जा सकता। उसके साथ मन की दृष्टि भी चाहिए।"

"केवल इतना ही नहीं, बुद्धि-विचार-भाव और धर्म-भावना भी।"

"केवल सौन्दर्य को देखने-भर के लिए?"

"नहीं, दृष्टि-क्षेत्र को असीम करने के लिए। मन को इतनी दूर खींच लें जाने के लिए, क्या हम अपना-आपा खो दें। क्या तुमने बुद्ध, ईसा और भारतीय मनीषियों का सौन्दर्य नहीं देखा? जिनका चित्रण करने में विश्व

के चोटी के चित्रकार खप गए और जिनका सौंदर्य-वर्णन करने में महा-प्रतिभान्वित कवि-गुरु, मूक-मौन हो बैठे। इस सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए कितने चित्र बने—कितने काव्य बने, और मानवीय प्रतिभा आगे न जाने कितने चित्र खींचेगी—कितने काव्य रचेगी फिर भी उस सौन्दर्य का सही चित्र होगा थोड़े ही।"

"संसार में एक-से-एक बढ़कर सुन्दरियां हुई हैं। और भी सुन्दरतम वस्तुएं जगत् में हुई हैं और होंगी, तब क्या बुद्ध, ईसा और मनीषियों का सौन्दर्य इन सबसे बढ़कर है, जिसके विषय में तुम कहती हो कि मानवीय प्रतिभा उसका सही चित्रण कभी कर ही नहीं सकेगी।"

"यही कहना चाहती हूं मैं।"

"क्या इसमें कोई रहस्य है?"

"है। वह सौन्दर्य भौतिक नहीं है। क्षणभंगुर नहीं है। केवल शरीर की आकृति से ही उसका सम्बन्ध नहीं है। वह मंगल-रूप है।"

"मंगल-रूप तुम किसे कहती हो भला?"

"जो वस्तु आत्मा की भूख को तृप्त करती है, आवश्यकता को पूरा करती है, सुन्दर भी है, नेत्रों को और मन को आनन्द प्रदान करती है, जिसे देखकर, पहचानकर, उसमें अपनी भलाई, शाश्वत-भलाई पाते हैं। उसी को हम मंगल-रूप कहते हैं।"

"अन्न को, वस्त्र को, इष्ट-मित्रों को हम क्या मंगल-रूप नहीं कह सकते? उनसे भी तो हमारे शरीर और मन की तृप्ति होती है।"

"आंशिक रूप में वे सब भी मंगल-रूप हैं। अन्न, वस्त्र, धन, रत्न, सुवर्ण, इष्ट-मित्र। परन्तु वे कविगेय पदार्थ नहीं। जो वस्तु हमारी कायिक और मानसिक सब आवश्यकताओं की पूर्ति करके भी अक्षुण्ण, अखण्ड, उदार रहे, भोग हो जाने पर भी, अपनी आवश्यकता की पूर्ति हो जाने पर भी, उसका वैसा ही आकर्षण, वैसा ही सौन्दर्य बना रहे। उसी प्रकार वह हमारी चेतना को, बुद्धि को, भावना को आकर्षक प्रतीत हो वही वस्तु पूर्ण मंगल-रूप है। उत्तम स्वादिष्ट भोजन से तृप्त हो जाने पर विरक्ति हो जाती है। इसी से ये सब आंशिक मंगल-रूप हैं। जो सर्वांग मंगल-रूप है, उसके अनिर्वचनीय सौन्दर्य का कविजन वर्णन करते हैं, कलाकार उसे चित्रित करते हैं और नीतिकार उसकी व्याख्या करते हैं।"

"तो, मंगल को हम सुन्दर कहते हैं। वह इसलिए नहीं कि उससे हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।"

"यही बात है। राम पिता की आज्ञा से वन गए, परन्तु लक्ष्मण बड़े भाई के प्यार में बंधकर स्वेच्छा से गए— उनकी सेवा करने। बुद्ध ने अपनी प्रियतमा से मुंह मोड़ घर त्यागा—प्राणियों के दुःख से द्रवित होकर, ईसा ने सत्य की व्याख्या करते हुए प्राण दिए और अपने हत्यारों को निरुद्वेग रहकर क्षमा कर दिया। सुकरात ने ज्ञान और विवेचना की मुक्ति के लिए विषपान किया। सन्तों ने मनुष्य को प्यार करते हुए प्राण दिए। इन सब चरित्रों के साथ—करुणा है, क्षमा है, प्यार है, त्याग है, महानता है; हृदय का, जीवन का, भावना का अपरिमित सौन्दर्य है। इसीसे ये सब चरित्र शाश्वत मंगल-रूप हैं, सुन्दर हैं। उनके साथ समूचे संसार के प्राणियों का एक सामंजस्य है। फिर, सत्य के साथ इस मंगल-रूप का कैसा मेल है! उस सौन्दर्य के चारों ओर विरोधहीन संसार मुग्ध होकर उसकी सुषमा को निहार रहा है। वह सबके अनुकूल है, और सब उसके अनुकूल, यही तो शाश्वत-सत्य का सत्य रूप है।"

"किन्तु, सौन्दर्य और मंगल का मेल कहां होता है?"

"ऐश्वर्य में। जहां सौन्दर्य पूर्णता को प्राप्त होकर अपनी प्रगल्भता को छोड़ देता है। प्रयोजन के परे जो सौन्दर्य है, वह ऐश्वर्य है। हमारी स्वार्थ-साधना, चाहना, वासना एक भूख है, एक अभाव है, जो वासनामय है। जो भूखे हैं, वे सब दरिद्रता को प्यार करते हैं। अभाव और भूख का नाम ही तो दरिद्रता है। ऐश्वर्य वह वस्तु है जो दरिद्रता के इस प्रेम से मनुष्य को मुक्त करे। जो मंगल-रूप वस्तुएं हैं, वे सब ऐश्वर्यमय हैं। हमारे सुख-दुःख से, स्वार्थ से, प्राण से, जीवन से, सबसे वे बड़ी हैं, महान् हैं, अक्षय हैं, अक्षर हैं। जब हमारा मन मंगलमय हो, उठता है तो फिर हम सचराचर विश्व को सुन्दर—अति सुन्दर रूप में देखते हैं।"

"तब तो कहना होगा कि हमारी जीवन-यात्रा की सारी ही सम्पन्नता तुम्हारे इस ऐश्वर्य की समता नहीं कर सकती?"

"कैसे कर सकती है। हमारी सम्पन्नता तो हमारे भोग के ही लिए है न। बताओ तो भला, कहाँ है पृथ्वी को जय करने वाले सम्राटों के विलास-महल? उनके विजय-चिह्न, उनकी राजधानियां, उनके साम्राज्यों के

अवशेष। परन्तु निर्जन वन-स्थलों में—अजन्ता, एलोरा, आबू, सांची और सारनाथ में जहां-तहां मूर्तिमती कला आज भी अपने से बड़े सौंदर्य को—अपने से बड़े ऐश्वर्य को नतमस्तक प्रणाम कर रही है। आप देख नहीं रहे कि मनुष्य का साहित्य, संगीत और ललित कलाएं उसी ज्ञात और अज्ञात ऐश्वर्य का ऊंचे स्वर से गान कर रही हैं? क्या आप सुन नहीं पाते?"

"सुन रहा हूं मिस रतन और आज इस समय—उस ऐश्वर्य का उस शाश्वत सत्य का मूर्त-मंगल-रूप इस क्षण अपनी आंखों से देखने की प्रेरणा प्राप्त कर रहा हूं।" रतन ने आश्चर्य से पूछा—"कहां, कहां?"

"तुम्हारे मुख में, नेत्रों में, वाणी में और वायु में फहराते हुए तुम्हारे इस यशोज्ज्वल धवल अंचल में। देख रहा हूं—शुभ्र वसना, कमलालय निवासिनि, कमल-दल-शोभिनी, शारदीय-शोभा-धारिणी भगवती भारती मूर्तिमती यहां उपस्थित है।"

रतन हंस पड़ी, उसने जिन्ना का हाथ खींचते हुए कहा—"कामना करती हूं कि आप! महाकवि के रूप में जगत् विख्यात हों।"

"जगत् में विख्यात होने की तुम्हारी कामना मेरे भावी जीवन का पथ-प्रदर्शन करेगी। इस कामना के लिए मैं तुम्हारा धन्यवाद करता हूं।"

रतन ने जिन्ना के हाथ को अपने शुभ्र मस्तक से लगाते हुए मुस्कराकर कहा—"आपका धन्यवाद मेरे सिर-माथे पर, परन्तु सामने तो देखो वर्षा आ रही है। आओ कॉटेज में लौट चलें।"

जिन्ना ने मेघों को आते देख रतन का हाथ पकड़कर उसे कॉटेज की ओर खींचते हुए कहा—"अरे सच, भागो नहीं तो ये मेघ-जल हम लोगों को यहीं आप्यायित कर देंगे।"

कॉटेज में पहुंच जिन्ना ने कहा—"अपने कमरे में चलता हूं।"

"इस सांध्य सान्निध्य सुख की अनुभूति का एक प्याला तो मेरे साथ पीते जाइए।" कहकर रतन ने नौकर को चाय लाने की आज्ञा दी।

चाय आने पर रतन ने चाय बनाकर कप जिन्ना को दिया। जिन्ना ने कप लेकर कहा—"तुम सौ बरस जिओ मिस रतन!"

"हाय, हाय, आप मुझे बूढ़ी होने का डर दिखा रहे हैं!"

जिन्ना ने सिप लेते हुए मुस्कराकर कहा—"कामना करता हूं—चिर यौवन की।"

## 8. आत्मार्पण

सर दिनशा पेटिट अपने ड्राइंगरूम में आरामकुर्सी पर बैठे सुबह का अखबार पढ़ रहे थे। परन्तु उनका मन अखबार में नहीं था, किसी गूढ़ विषय की प्रतिक्रिया उनके गम्भीर मुख पर झलक रही थी। अखबार की एक-दो पंक्तियां पढ़कर वे उसे छोड़ देते और नेत्र मूंदकर कुछ विचारने लगते। उनका मन अशान्त था, अपने क्रोध और आवेश को वे अत्यन्त धैर्य से संभाल रहे थे। इसी समय रतन ने उनके कक्ष में प्रवेश किया और एक शेल्फ के पास जाकर कुछ पुस्तकें ढूंढ़ने लगी। दार्जिलिंग-प्रवास से लौटकर रतन का हृदय उछल रहा था। जिन्ना की विशाल छाया में उसे विश्राम-सुख की अनुभूति होने लगी थी। एक अनिर्वचनीय आत्मानुभूति से आप्यायित आनन्द उसके गर्म खून में नाच उठा था।

आत्मसन्तोष और गर्व से वह पुलकित दीख रही थी। अपनी सोलह वर्ष की किशोर वय और जिन्ना के चालीस वर्ष की प्रौढ़ावस्था के दैहिक मिलन की अपेक्षा सांस्कृतिक आचरण और अध्यात्म-प्रेम की ओर उसकी दृष्टि थी। आध्यात्म-प्रेम आत्मा को विभोर करके मानसिक शान्ति प्रदान करता है। दैहिक सम्बन्ध बनाकर वे दोनों पति-पत्नी बनेंगे, एक श्रेष्ठ पुरुष का सान्निध्य उसे जीवन-भर प्राप्त होगा, उसके यश के बढ़ते सौरभ से वह स्वयं को श्रृंगारित करके सौभाग्यवती नारी का पद ग्रहण करेगी। विकास और प्रगति में उसका पथ प्रशस्त होगा। इसी आत्मस्मृति में वह आत्मरत और मुग्ध थी। बाधाहीन आत्मिक सुख की उपलब्धि की ही उसे प्यास थी। इसी आत्मानुभूति में एक बज्रघोष सुन पड़ा, "रतन।"

उसने पीछे मुड़कर देखा उसके पिता क्रोधावेश में उसे पुकार रहे हैं।

आत्मानुभूति को तनिक भी खण्डित न कर और अपने हाथ की पुस्तक वहीं शेल्फ में रख वह द्रुतवेग से पिता के सम्मुख आ खड़ी हुई। उसने पिता की बज्रध्वनि तो सुनी थी, क्रोध का आभास भी पाया था, परन्तु उसकी आत्मानुभूति इतनी गहरी थी कि उसने पिता के समीप पहुंचकर उनके कंधे पर हाथ रखकर अत्यन्त सरल भाव से निष्पाप वाणी में जिज्ञासा भाव से प्रश्न किया—"क्या बात है पिताजी ?"

रतन का स्पर्श पाकर पिता कुछ पिघल गए। उन्होंने उसकी भोली

आंखों में पवित्र भावों की आभा नाचती देखकर स्वयं को संयत किया।

उन्होंने उसे बैठ जाने का संकेत किया और उसके मुख पर पुनः एक दृष्टि डालकर फिर किसी विचार में लीन हो गए।

रतन पिता का यह भाव देख चिन्तित हो उठी, परन्तु आत्मानुभूति का जो प्रभाव उसके रक्त को उछाल रहा था, उसीसे प्रभावित हो उसने पिता की ओर अत्यन्त प्यार-भरी दृष्टि डालकर फिर प्रश्न किया—"क्या बात है पिताजी ?" सर पेटिट ने देखा कि अपना क्रोध उस पर प्रकट करने की सामर्थ्य अब उनमें नहीं रही है। उसकी प्यार-भरी चितवन और बाल-भाव की निश्छल वाणी ने उन्हें हिला दिया है।

उन्होंने शान्त वाणी में कहा—"रतन, क्या तुम जिन्ना के प्रति किसी वचन से बद्ध हो चुकी हो ?" रतन ने लज्जा से लाल होकर नीची दृष्टि करके भोलेपन से उत्तर दिया —"हां, और मैं उस वचन की पूर्ति की आज्ञा आपसे लेने की आशा रखती हूं।"

"पर क्या यह उचित होगा ? बिरादरी के बन्धन हैं, आयु के बन्धन हैं, मेरी सामाजिक प्रतिष्ठा की भी मर्यादा है।"

"परन्तु श्रेष्ठ व्यक्तित्व तो सभी बन्धनों से ऊपर है। बन्धनों का विचार श्रेष्ठ पुरुष कभी नहीं करते।"

"तुम अभी बच्ची हो, जीवन की राह से अनजान हो। फिर अभी तो तुम्हारी शिक्षा चल रही है। क्या तुम कॉलेज जाना छोड़ दोगी ?"

"विद्याध्ययन तो मेरा जीवन है, उसे कैसे छोड़ूंगी। मैं पढ़ूंगी भी और अपने जीवन-साथी का हाथ भी पकड़ूंगी।"

"ज़िन्ना की विद्वत्ता और मेधा-शक्ति की मैं प्रशंसा करता हूं, परन्तु उससे तुम्हारा विवाह नहीं किया जा सकता। तुम्हारे लिए मैं अन्य उपयुक्त वर ढूंढ़ लूंगा —जल्दी क्या है। अभी तुम सोलह वर्ष की लड़की हो।"

"मुझे जो निर्णय करना था, वह मैंने आपके सामने प्रकट कर दिया। मेरे सुख और जीवन-उत्कर्ष का मार्ग मेरे सामने उपस्थित है। आप यदि इसमें बाधा देंगे तो अपने बलिदान से मैं आपकी इच्छा और मर्यादा की रक्षा करूंगी। मुझ जैसी अवज्ञाकारी अनेक लड़कियां नित्य विस्मृत होती रहती हैं।" सर पेटिट अपनी पुत्री का अभिभाषण सुन भौचक रह गए। उन्हें उसके हृदय की गहराई पर आश्चर्य हो रहा था। उन्होंने कुछ क्रुद्ध

भाव से कहा—"मैं तुम्हारा पिता हूं, तुम्हारे हित-अहित का भी उत्तरदायी हूं। तुम्हारे वयस्क होने में अभी दो वर्ष का समय है। अपनी परिधि में बालिग न होने तक कानून भी तुम्हें मनमानी करने की आज्ञा नहीं देगा।"

"मेरे पिता, ईश्वर मुझे ऐसी दुर्बुद्धि न दे कि मैं अपने पूज्य और प्रियजनों के स्नेहांचल से वंचित होकर अपने पति की सेवा में जाने की स्थिति की ओर अग्रसर होऊं। मुझे अभी वहां जाने की जल्दी नहीं है। जिन्ना के दर्शन और उनका सान्निध्य अब तब मुझे प्राप्त हो ही जाता है। दार्जिलिंग के प्रवास-काल ने बहुत सुखद स्मृतियां भी मेरे मानस में भर दी हैं। दो वर्ष तो क्या—दो शताब्दियां भी प्रियतम की स्मृति में व्यतीत करना भारतीय नारी के लिए सम्भव है। मैं आपको किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होने दूंगी। आप केवल मुझे और जिन्ना को अपना आशीर्वाद दीजिए।"

"जिन्ना अत्यन्त स्वाभिमानी आत्मनिष्ठ और असंवेदनशील है। स्वाभिमानी तुम भी हो, परन्तु संवेदनशील भी हो। फिर और भी असमानताएं हैं।"

"परन्तु असमानतएं तो दूर की जा सकती हैं। मनुष्य बुद्धि-जीवी है। विवेक और संयम उसके सहायक हैं।" सर पेटिट हठात् उठ खड़े हुए। गृहपति के गौरव का क्षीण होना अब वे सहन नहीं कर सकते थे।

दिन बीतते चले गए। सर पेटिट रतन की ओर से उदासीन हो गए। परिवार के अन्य जनों ने भी उसे समझाने की बहुत चेष्टा की, परन्तु रतन जिन्ना के प्रति श्रद्धावान भी थी, इसीसे प्रेम और श्रद्धा ने उसे अपने निर्णय पर दृढ़ रखा। पहले सर पेटिट उसे जिन्ना की प्रत्येक मीटिंग में अपने साथ ले जाते थे, अब उन्होंने जिन्ना की मीटिंग में जाना कम कर दिया। जाते भी तो रतन को साथ नहीं ले जाते थे। परन्तु रतन जिन्ना की एक भी मीटिंग से अनुपस्थित न रही। उनकी वाक्धारा उसकी मानसिक तृप्ति का स्रोत थी। दोनों एक-दूसरे को देखकर हर्षित हो उठते थे।

दो वर्ष का समय भी बीत गया। रतन ग्रैज्युएट हो गई। उसने अपनी आयु का 18वां वर्ष पार कर लिया। अब उसकी बुद्धि और भी विकसित हो गई थी। एक दृढ़ आत्मनिश्वास से उसकी गरिमा और भी

अधिक पुष्पित हो उठी थी। उसका उन्नीसवां जन्म-दिवस बहुत धूम-धाम से मनाया गया। इससे पूर्व के आयोजित उत्सवों में उसे इतना उत्साह नहीं प्राप्त होता था, जितना आज उसे प्राप्त था। उसने सभी अभ्यागतों का हृदय से स्वागत किया, उन्हें अपने वाक्-चातुर्य और प्यार-भरे व्यवहार से प्रसन्न किया और जब समारोह की समाप्ति का क्षण आया तब उसने सबसे प्यार-भरी विदा ली। अपने पिता के सामने जाकर उसने कहा—"पूज्य पिता, आपके आशीर्वाद लेने का क्षण आ पहुंचा है। अब मुझे अपने पति के घर जाने की आज्ञा दीजिए। आप सबके प्रेम और आशीर्वाद से आप्यायित होकर मैं अपने नये जीवन में प्रवेश करते समय बहुत प्रसन्न हूं। मैं नहीं चाहती कि मेरे वैवाहिक संस्कार सम्पन्न करने के कारण आपको कष्ट उठाना पड़े, इसलिए उत्तम होगा कि यह भार हम दोनों स्वयं ही उठायें।" सबको प्रणाम कर और अपने पढ़ने की कुछ अति प्रिय पुस्तकों को एक अटेची में रखकर वह वहां से चल दी। कोठी से बाहर आ उसने गाड़ी ली और अपने पतिगृह की ओर चल पड़ी। किसी ने उसे नहीं रोका। उसके इस व्यवहार से कोई स्तब्ध था, कोई दुःखी, कोई क्रुद्ध। निस्सन्देह, सर पेटिट का परिवार इतना सम्भ्रान्त और गरिमापूर्ण था कि उसमें कोई भी अशोभनीय प्रतिक्रिया नहीं हो सकती थी।

गाड़ी से उतरकर रतन सीधी जिन्ना के स्टडीरूम में चली गई। इस समय वे एक पेचीदा केस की संदर्भ-पुस्तकों में उलझे हुए थे। रतन ने उनकी पीठ पर अपना कोमल हाथ रख दिया। जिन्ना चौंक उठे। उन्होंने आंख उठाकर देखा—दिव्य कल्पना की सुन्दरी, छरहरा वदन, मोती की आभा-सा रंग, सुर्ख साड़ी समुद्र की दक्षिणमलय में फरफराती हुई, चांदी के समान माथे पर बंधा रेशमी सुनहरी फीता, नये ढंग से बंधे बाल, कुछ बिखरे से हैं। मोतियों की लड़ को मात करने वाली धवल पंक्तियों का हास्य, हास्य में हिलते होंठों का गुलाब की पंखुड़ियों के हिलने का स्पष्ट आभास। अब से दो वर्ष पूर्व परिचित षोडशी बाला अब वयस्क युवती बन गई है। उसके रूप और अंग-सौष्ठव की छवि पूर्ण विकसित हो चुकी है। एक सम्मोहन उसकी दृष्टि में व्याप्त है। सौभाग्य-लक्ष्मी की प्रति-मूर्ति उनके सम्मुख आ खड़ी हुई है। यह सब देख उनका एकाकी भाव नष्ट हो गया, उन्होंने मुस्कराकर उसके हाथों को अपने हाथों में लेकर कहा—"अरे,

मिस रतन, तुम यहां! तुम्हारा सन्देश मानकर मैं तुम्हारी जन्म-दिवस-पार्टी में नहीं गया, मैं अनुभव कर रहा था कि इस अत्यन्त आकर्षक अवसर पर उपस्थित न रहकर मुझे कैसी प्रतीति हो सकती है।"

रतन ने उन्हें खींचकर कुर्सी से उठा लिया और एक सोफे पर खींच ले गई। "यहां बैठो, मेरे निकट, और भी निकट। हां, अब ठीक हुआ।"

जिन्ना उसकी ओर प्रेम-भरी दृष्टि से देख रहे थे। रतन ने हठात् उनकी गोद में लुढ़ककर कहा—"प्यारे, अब मैं अपने घर आ गई हूं। लौट कर पिता के पास नहीं जाऊंगी। सबसे विदा लेकर मैं अकेली ही आ गई हूं। और कोई साथ न दे, पर आप तो मेरे साथी हैं—जन्म-भर के साथी, समझते हैं न। आपका साथ ही मुझे चाहिएं, मेरे प्यारे!"

उसने भुज-वल्लरी जिन्ना के गले में डाल दीं। जिन्ना सब-कुछ भूल गए। गम्भीरता, एकाग्रता, शून्य भाव इस समय उनसे दूर थे। उनका यौवन लौट आया था। कमनीय नारी के स्पर्श ने उनके रक्त को गुदगुदा दिया था। उन्होंने कसकर उस तेज दर्प सौंदर्य और आनन्द की मूर्ति को अपने वक्ष में समेट लिया। अगले दिन 19 अप्रैल, 1918 के 'स्टेट्समैन' में लोगों ने कुतूहल के साथ यह सम्वाद पढ़ा—"सर दिनशा पेटिट की पुत्री रतन ने इस्लाम धर्म अंगीकार कर मिस्टर जिन्ना से शादी कर ली। इस समय जिन्ना की आयु 42 वर्ष और रतन की आयु 18 वर्ष की है।"

## 9. गुरुमन्त्र

लाला लाजपतराय बहुत दिनों बाद अमरीका से लौटे थे। उनके आगमन के समाचार से बम्बई हिल गई थी। प्रथम युद्ध समाप्त हो चुका था। समुद्र-तट की प्रशस्त बालू पर नरमुण्डों का समुद्र लहरा रहा था। लालाजी जिस जहाज में थे, वह तट से दूर ही समुद्र में रोक दिया गया था। प्रतीक्षा करने वाले अधीर हो रहे थे। पुलिस और अंग्रेज सार्जेन्ट घोड़ों पर चढ़े डंडों से व्यवस्था कर रहे थे। उस दिन न भूलनेवाले दृश्य थे। एक स्थान पर तिलक और एनी बीसेन्ट पास-पास कुर्सी पर बैठे थे। उनके बराबर ही रतन भी बैठी हुई थी। नर-नारियों का समूह उन्हें घेरे खड़ा था। एनी बीसेन्ट कुछ चिंतित थीं, परन्तु कभी-कभी तिलक के होंठ हिल

उठते थे। तिलक की नीचे झुकी मूंछों ने होंठों को ढक लिया था। सफेद मिरजई, दुपट्टा और लाल पगड़ी उन पर फब रही थी। तिलक कभी-कभी विनोद का शब्द कह उठते थे, परन्तु एनी बीसेन्ट मूर्ति-सी बैठी थीं। आखिर तिलक ने प्रश्न किया—"बीसेन्ट, कुछ चिंतित हो रही हो ?"

"हां बाल, मैं इस सुकुमार लड़की की सुन्दर आंखों में समाई हुई उदासी के कारण दुखी हूं। अभी इसके विवाह को अधिक समय नहीं हुआ कि इसकी जिन्ना से अनबन रहने लगी है। कोमल भावुक लड़की ने अपनी भावनाओं के वशीभूत होकर जिन्ना का हाथ पकड़ा, उसे पति के रूप में स्वीकार किया, परन्तु असमानताओं का अभी से प्रादुर्भाव होने लगा है।"

तिलक हंस दिये। फिर उन्होंने रतन की ओर देखकर कहा—"तुम्हारा स्वाभिमान स्वदेश के प्रति उन्मुख है, जिन्ना का व्यक्तित्व स्वयं की प्रतिष्ठा के प्रति। स्वदेश तुम्हें स्मरण रखेगा—जिन्ना को नहीं। इस-लिए तुम कर्म किये जाओ, फल की चिंता मत करो। सत्कार्यों के नायक को कभी उदासीन नहीं होना चाहिए।"

"सो तो ठीक है बाल", एनी बीसेन्ट ने कहा—"परन्तु इनकी अनबन अत्यन्त साधारण घटना के कारण हुई है। पिछले दिनों ये दोनों पति-पत्नी शिमला गए थे। वहां लार्ड चेम्सफोर्ड द्वारा दिये गए डिनर में धारा सभा के सभी सदस्यों की मण्डली में जिन्ना के साथ यह भी उपस्थित थी। जब इसका परिचय गवर्नर-जनरल से करांया गया तब इसने भारतीय संस्कृति के अनुरूप सम्मांनपूर्वक नमस्कार किया। इसे अंग्रेजी शिष्टाचार के विपरीत समझ गवर्नर-जनरल ने अपने निजी कक्ष में बुलाकर इसे स्मरण कराया कि अंग्रेजी स्थान पर अंग्रेजी शिष्टाचार व्यक्त होना चाहिए, पर इसने दृढ़ता से उत्तर दिया—"मैं भारत की संतान हूं। मुझे अपने देश के शिष्टाचार पर आचरण करने में गर्व है।" इसके इस तेजस्वी उत्तर से गवर्नर-जनरल तो नाराज हुए ही, जिन्ना ने भी अपनी पत्नी के व्यवहार पर अप्रसन्नता प्रकट की।"

तिलक हंस पड़े। उन्होंने रतन को बढ़ावा देते हुए कहा—"तुमने उचित किया। भारत की पुत्री को यही करना चाहिए, परन्तु जिन्ना की अज्ञानता से तुम स्वयं को प्रभावित मत करो। जिन्ना को उस प्रकाश की रेखा दिखाओ, जो तुम्हारे अन्दर है। जिन्ना असाधारण प्रतिभाशाली

व्यक्ति है, उसे स्वदेश के प्रति अनुरक्त करना होगा।"

ये बातें हो रही थीं कि जनसमूह में शोर बढ़ गया—'लालाजी की जय', 'पंजाब केसरी की जय'। समुद्र-तट की ओर आती हुई एक किश्ती में बैठे हुए लाजपतराय के दर्शन करके जनसमूह हर्ष-विह्वल हो उठा था।

तिलक और एनी बीसेन्ट भी तट की ओर अग्रसर होने के लिए उठ खड़े हुए। रतन अब उदास नहीं, प्रसन्न थी। उसने एनी बीसेन्ट का हाथ पकड़कर चलते-चलते कहा—"स्वदेश कितना प्यारा और आकर्षक होता है। देखिए मदर, लालाजी की आंखें स्वदेश की भूमि को प्रणाम कर रही हैं। ओह, कितनी महानता है आप सब विभूतियों में।"

एनी बीसेन्ट ने उसके हाथ को अपने हाथ में लेकर कहा—"सत्य ही भारत महान् देश है और हम उससे गौरवान्वित हैं।"

## 10. महाप्रयाण

काल की गति अबाध है। दिन बीते, वर्ष बीते और देखते-देखते एक दशक बीत गया। इस बीच रतन और जिन्ना की भावनाएं टकराकर पृथक् होती गईं। जिन्ना रतन के लिए झुक न सके, न कोमल बने। उनकी प्रकृति ही ऐसी थी। वे किसी को आत्मार्पण नहीं कर सकते थे। भावुक और सेवानिष्ठ रतन इस कठोर व्यक्ति से अपने लिए आत्मार्पण और स्वदेश के लिए भारतीय संस्कृति की अपेक्षा करती रही। एनी बीसेन्ट और तिलक के शब्दों से अपने पति के प्रति उत्पन्न उसके नैराश्य भाव उड़ गए। तिलक जब भी पूना से बम्बई आकर अपने आवास-स्थल सरदार-गृह ठहरते, वे रतन को सूचना भेज देते। रतन आकर उनके गीता-ज्ञान से अपनी आत्मा को प्रकाशमान करती। आध्यात्मज्ञान में उसे सुख मिलता था। परन्तु काल किसी पर कृपा नहीं करता, तिलक की भी वेला आ पहुंची।

जुलाई के अन्तिम दिन थे। नित्य ही बूंदा-बांदी होती रहती थी। उन दिनों बम्बई के दैनिकों में दो बातें मुख्य पृष्ठ पर छपती थीं। एक गांधीजी का आरम्भ होनेवाला असहयोग संग्राम, जिसके सम्बन्ध में सबकी सन्देह-दृष्टि थी, दूसरे लोकमान्य तिलक, जो उन दिनों बम्बई में मृत्यु-शय्या पर पड़े थे। इधर तीन दिन से लोकमान्य की हालत निराशाजनक होती जा

रही थी और दिन में अनेक बार डाक्टरों के बुलेटिन निकलते रहते थे। सारी बम्बई नगरी आशंका और उद्वेग से व्याकुल थी।

इस समय अपनी महायात्रा की तैयारी लोकमान्य अपने जन्मस्थान पूना में न कर 'सरदार-गृह' में कर रहे थे। 'सरदार-गृह' एक महाराष्ट्र खाणावल (अतिथि और भोजन-गृह) अब भी बम्बई में है। वहां नामांकित चिकित्सकों की, जिनमें वैद्य, डाक्टर, हकीम और ज्योतिषी भी थे, भीड़ लगी रहती थी। 31 जुलाई की वह अर्द्ध रात्रि कभी नहीं भूली जा सकती। 'सरदार-गृह' के कमरे में एक शय्या पर लोकमान्य चुपचाप पड़े थे। ऊपर से नीचे तक श्वेत वस्त्र से ढके, भारी-भारी पलकें मुंदी हुई थीं, मोटी-मोटी भौंहें नीचे को झुकी हुई थीं। बड़ी-बड़ी श्वेत मूंछों से होंठ दिखाई नहीं पड़ते थे। एक-दो निकट सम्बन्धी सिरहाने और निकट खड़े उनके आदेशों का पालन कर रहे थे और क्षण-क्षण पर बिगड़ती हुई दशा को देख रहे थे। कभी-कभी लोकमान्य बिना पलक उठाए मंद स्वर से कुछ कहते और पास वाले झुककर सुनते। चिकित्सक अब इलाज नहीं कर रहे थे। अब उन्हें कष्ट न हो यही चेष्टा कर रहे थे। रतन बहुत अधीरता से कभी बाहर आती, कभी भीतर जाती, कभी उनके एकाध वाक्य सुनने की चेष्टा करती, कभी एक तरफ जाकर रो लेती थी। और भी लोग यही कर रहे थे, बात कोई किसी से न करता था। कमरे में गहन सन्नाटा था। लोकमान्य को बीच-बीच में झपकी आ जाती थी, तब उनके कंठ से खरखराहट की आवाज आती थी, जो कमरे के बाहर से भी सुनाई देती थी। बहुत बार श्वास बंद होने का संदेह हुआ, लोग दौड़े, पर लोकमान्य ने नेत्र खोल दिये। देखनेवालों की आंखें बरस रही थीं, पर लोकमान्य शांत और चुप थे, कराहना भी बहुत कम सुन पड़ता था। अगले दिन प्रभात ही में पहली अगस्त को गांधीजी असहयोग आंदोलन आरम्भ करने की घोषणा कर चुके थे। जलियांवाला हत्याकाण्ड और रोलट ऐक्ट का वार हो चुका था। खादी का जन्म भी अभी हुआ ही था, विदेशी वस्तु के बहिष्कार पर लोगों का मन ठहरा न था। गांधीजी ने असहयोग का विवरण अमृतसर कांग्रेस में पहले-पहल दिया था। गांधीजी भी तब तक उसके पूरे भाव से अनभिज्ञ थे। फौजी कानून ने पंजाब की ओर देश का ध्यान खींच लिया था और इस अन्याय के विरुद्ध चारों ओर ऊंची आवाज उठ रही थी। मोतीलाल नेहरू, स्वामी श्रद्धानंद,

लोकमान्य, मालवीय, चित्तरंजन दास और लाजपतराय पर सबकी नजर थी। गांधीजी का विरोध सर्वत्र था, विरोधियों में लोकमान्य अग्रगण्य थे, केवल जिन्ना और मालवीय नरम थे। लोकमान्य और देशबंधु चित्तरंजन दास उस समय दो चोटी के नेता थे। देशबंधु का दिल असहयोग की तरफ था। लाला लाजपतराय पशोपेश में थे। पर मोतीलाल नेहरू आगे कदम बढ़ाने को तैयार थे।

लोकमान्य का मस्तिष्क इस मुमूर्षं अवस्था में भी इस राजनीतिक गुत्थी को सुलझाने में अटका हुआ था। ठीक बारह का घंटा बजते ही कोई एक असाधारण व्यक्ति कमरे में आये। संभवतः वे केसकर थे। उनके आने की सूचना पाकर लोकमान्य ने नेत्र खोल दिये। उन्होंने कहा—"गांधी देश को कहां ले जायेगा ?" वाक्य मराठी भाषा में था—बहुत धीमे स्वर में। आगन्तुक महाशय ने बहस न करके बात टालने की चेष्टा की। परन्तु सम्भवतः वे कुछ संदेश लाये थे। लोकमान्य के विरोध से वे परिचित थे।

लोग धीरे से होंठों ही में बातें करते थे, और पद-शब्द न हो, इस प्रकार आते-जाते थे। रतन ने लोकमान्य की पद-वंदना की। वह सोच रही थी कि अब दीपक बुझनेवाला है। देखते-ही-देखते लोकमान्य स्वर्ग प्रयाण कर गये। रतन चीत्कार करती हुई उनके पैरों पर गिर पड़ी।

विद्युत-वेग से उनकी मृत्यु का समाचार फैल गया और कुछ ही क्षणों में वहां इतनी भीड़ हो गई कि भीतर जाना सम्भव न रहा। बाहर बूंदा-बांदी हो रही थी। धोबी तालाब के मैदान में नरमुंड ही नरमुंड दीख रहे थे। सब नंगे सिर थे। बम्बई में नंगे सिर कम लोग रहते हैं। भीड़ इतनी हो गई कि चलना-फिरना सम्भव न रहा। धीरे-धीरे भीड़ में जहां-तहां मृदंग की ध्वनि और कीर्तन का संयुक्त कण्ठ स्वर गूंजने लगा। यह गूंज और स्वर बढ़ता ही गया। कुछ लोग उन्मत्त भाव से भावावेश में आकर गाने-नाचने लगे, पर यह सब गान-कीर्तन मराठी में हो रहा था।

धीरे-धीरे दिन निकला और लोगों ने देखा कि बारजे पर पद्मासन में लोकमान्य को बैठाया गया, पुष्पों से आकंठ सजाकर। वही झुकी हुई पलकें, पीत मुख, होंठों पर छाई हुई मूंछें, जैसे ध्यानस्थ ऋषि हों। मण्डलियां सम्मुख आकर मृदंग बजाकर कीर्तन-गान करने लगीं। बारिश तो हो ही रही थी, अब तो नरमुंडों का समुद्र था। लोग ऋषि के दर्शन से तृप्त नहीं

होते थे, पर भीड़ का रेला उन्हें आगे धकेल देता था। बहुत-से लोग कुचल कर बेहोश हो गए।

कोई दस बजे अर्थी चौपाटी की ओर चली। चौपाटी पर दाह करने का खास प्रबन्ध किया गया था। बम्बई के इतिहास में यह प्रथम अवसर था कि किसी का शवदाह चौपाटी पर हो। जहां इस समय लोकमान्य की प्रतिमा खड़ी है, ठीक उसी स्थान पर दाह हुआ था। शव-यात्रा को चौपाटी पहुंचते-पहुंचते संध्या हो गई थी। अब चौपाटी कुछ ही दूर रह गई थी कि पंजाब से लाला लाजपतराय और उनके साथियों ने एक स्पेशल ट्रेन से आकर अर्थी को कंधा दिया। तब तक हवाई जहाज न चले थे। तमाम रात चौपाटी पर मेला-सा रहा, दूसरे दिन बल्लियां बांधकर उस स्थान पर घेरा-सा बना दिया गया था। सैकड़ों स्त्री-पुरुष, आबाल-वृद्ध आते, फूल-फल, पैसा-टका, दूध-मिष्ठान्न चढ़ाते, माथा टेकते और वहां की एक चुटकी राख यत्न से पल्ले में बांधकर ले जा रहे थे, बहुत-से लोग भजन गाते, कीर्तन करते उस स्थान की परिक्रमा कर रहे थे, काफी लोग रो रहे थे, बहुत-से लोग देर तक भूमि पर सिर टेक कर निश्चल पड़े रहते थे।

उन दिनों इसी स्थान पर कुछ मछुओं की झोंपड़ियां भी थीं। वर्षा में भीगने से बचने लिए इन झोपड़ियों में ठसाठस स्त्री-पुरुष भरे हुए थे, इन लोगों की चांदी थी। जहां आज लोकमान्य का भव्य स्मारक है, उसके सम्मुख अब तो महालयों की एक लम्बी कतार मैरीन ड्राइव तक बन गई है। उन दिनों ये महल नहीं बने थे, समुद्रतट भी खुला था।

उसी दिन सायंकाल को असाधारण सभा जुड़ी। छोटी आंखों और बड़ी-बड़ी मूछोंवाले ठिगने से पंजाब केसरी लाला लाजपतराय उस दिन सभा में लाखों मनुष्यों के केन्द्र बने हुए थे। अविरल वाग्धारा प्रवाहित हो रही थी, लोग हिचकियां ले रहे थे। कई दिन तक रतन लगातार उस स्थान पर जाती रही। बहुधा वह उन बल्लियों का स्पर्श करती, उनके इर्द-गिर्द घूमती—मूक, मौन, सूनी-सूनी नजर से अभी हाल में लोप हुई मूर्ति को जैसे वहां उसी प्रकार समाधिस्थ देखती। वही भारी-भारी झुकी हुई पलकें सफेद मूछों से ढके हुए होंठ, और पीला ऋषियों के समान मुख, जैसे आहिस्ता से कह रहा था—"गांधी देश को कहां ले जा रहा है?"

ये वाक्य अमर सांस्कृतिक वाक्य थे। सम्भवतः रात को बारह बजकर

40 मिनट पर लोकमान्य ने नश्वर शरीर त्यागा और उसी क्षण भारत में असहयोग यज्ञ का अग्न्याधान हुआ। भारत की महान् राजनीति में नये युग का आरम्भ हुआ। तिलक का उग्र विद्रोह गांधीजी के असहयोग की तरलाग्नि में बह गया। 'स्वराज्य' शब्द सर्वप्रथम दादाभाई नौरोजी ने 1906 में घोषित किया। 1916 में तिलक ने 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का शंखनाद किया और 1920 में गांधीजी ने स्वराज्य-प्राप्ति का नया पथ चुना।

## 11. पराजित

जिन्ना दो व्यक्तियों से प्रभावित हुए। दादाभाई नौरोजी और गोपाल कृष्ण गोखले। दादाभाई को अपना बुजुर्ग मानकर उनके साथ राजनीति के पथ पर वे चल पड़े। 1906 में कलकत्ता कांग्रेस में दादाभाई सम्मिलित हुए थे, जिन्ना उनके प्राइवेट सेक्रेटरी के रूप में कांग्रेस-मंच पर उपस्थित थे। वहां जिन्होंने विशाल जन-समूह के समक्ष दादाभाई को जब अपना भाषण इन शब्दों के साथ समाप्त करते सुना—'हम भारत में अपना राज्य चाहते हैं। केवल अपना राज्य, जिसमें ब्रिटिश गवर्नमेंट का कोई अंकुश नहीं होगा।' तब वे अपने को रोक न सके और उन्होंने भी अपने गुरु से आशीर्वाद प्राप्त करके, मंच पर एक तर्क-सम्मत भाषण दिया, जिसे सुनकर सभी ने जिन्ना की वाक् और तर्क-शक्ति की प्रशंसा की। वहीं उन्होंने कांग्रेस में सम्मिलित होने का निश्चय किया।

उस समय जिन्ना की आयु तीस वर्ष की थी। पहली पत्नी की स्मृति भी उन्हें न थी और उसके बाद किसी स्त्री के प्रति आकृष्ट होकर विवाहित जीवन पर विचार करने की प्रवृत्ति भी उनकी नहीं थी। सरोजिनी नायडू भी उन दिनों युवा थीं और कवि होने के कारण प्रेम तथा भावनाओं की उमंगें उनके अंतर में उठा करती थीं। उस समय की शिक्षित महिलाएं जिन्ना के व्यक्तित्व से प्रभावित होती थीं, परन्तु स्वयं जिन्ना की रूखी प्रकृति उन्हें उनकी इन भावनाओं का आभास भी नहीं होने देती थी। सरोजिनी नायडू को जब यह मालूम हुआ कि जिन्ना भी कांग्रेस में सम्मिलित हो गए हैं, तब उन्होंने कहा था—'हाय-हाय, इस सुन्दर युवक को

क्या हो गया है ? उसने राजनीति में प्रवेश क्यों किया है ?' वे जिन्ना को प्रणय कविताएं लिखकर दिया करती थीं। एक बार उन्होंने जिन्ना के जन्म-दिवस पर ये पंक्तियां लिखकर भेजीं—दोपहरी के दुधर्ष समय में, ओ निर्द्वन्द्व और पाषाण प्रिय ! मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं, किन्तु रात्रि के एकाकी क्षणों में, जबकि खामोश पर्वतों और मौन गहराईयों में—तारों-भरी नीरवता का उन्माद सोता है, और तब मेरी आत्मा तुम्हारे प्रिय सम्बोधन की भूखी होती है।

जब जिन्ना ने यह कविता पढ़ी तो भृकुटी में बल पड़ गए। उस कविता को एक लिफाफे में बंद कर नौकर के हाथ सरोजिनी को वापस भेज दिया। गोखले का जन्म 1866 में एक निष्ठाव्रती मराठा ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उन्होंने 1884 में बम्बई के एल्फिस्टन कालेज से शिक्षा समाप्त की और फरग्यूसन कालेज पूना में इतिहास और पालिटिकल-इकनामी के प्रोफेसर हुए। उन्होंने 1902 में राजनीति में प्रवेश किया। जिन्ना से उनकी मैत्री 1912 में हुई। आरम्भ से ही दोनों परस्पर प्रभावित हुए। गोखले ने जिन्ना के प्रति यह कहा था—"ही हैज ट्रूस्टफ इन हिम टु बिकम एम्बेसडर आफ हिन्दू-मुस्लिम यूनिटि।"

जिन्ना ने गोखले के प्रति कहा था—"इट इज माई एम्बिशन टु बिकम मुस्लिम गोखले।" मित्रता इतनी बढ़ी कि दोनों ही दो मास की छुट्टियां मनाने अप्रैल 1913 में इकट्ठे इंग्लैंड गये। उस समय जिन्ना की आयु 36 वर्ष और गोखले की आयु 47 वर्ष थी।

1907 में कांग्रेस ने विप्लववादी कांग्रेस-जनों को कांग्रेस की सदस्यता से निकाल दिया था। गांधीजी का प्रभाव कांग्रेस में बढ़ता जा रहा था। जिन्ना गांधीजी के इस व्यापक प्रभाव को सहन नहीं कर पा रहे थे। 1916 में गांधीजी ने सभी पूर्व-निष्कासित सदस्यों को पुनः कांग्रेस में सम्मिलित कर लिया। जिन्ना ने इसे गांधीजी का 'हिन्दुत्व के प्रति पक्षपात' कहा और उन्होंने कड़े शब्दों में गांधीजी से प्रश्न किया—"आपने यह परिवर्तन और वचन-भंग क्यों किया ?"

गांधीजी ने गम्भीरता से उत्तर दिया—"मेरी आत्मा के प्रकाश ने मुझे ऐसा करने के लिए प्रेरणा दी।" जिन्ना खीज उठे। उन्होंने गांधीजी के प्राइवेट सेक्रेटरी की ओर मुख करके कहा—"आत्मा का प्रकाश गया

जहन्नुम में, यह क्यों नहीं कहते कि गलती हुई है।"

इतना कहकर वे उठकर चले गये। उन्होंने बाहर आकर लोगों से कहा—"गांधीजी ने वचन-भंग किया है।"

1913 में वे मुस्लिम लीग के भी सदस्य हो गए। परन्तु उस समय भी उनकी भावना हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयत्न करने की थी, पर वे लीग और कांग्रेस में एकता स्थापित नहीं कर सके। कांग्रेस-जैसी विशाल राजनैतिक संस्था में जिन्ना स्वयं को विलीन नहीं कर सके। वे अपनी शान और जिद तो प्रकट करते ही थे, परन्तु जन-साधारण को अपनी बात समझाने के लिए जनता की भाषा में कभी भाषण भी नहीं देते थे। वे अंग्रेजी में बोलते थे। देश के लिए त्याग करना, कष्ट सहना, गरीबों के सम्पर्क में आकर उनके दुःखों का ज्ञान प्राप्त करना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। 1928 में क़लकत्ते में हुई कांग्रेस की बैठक में जब वे धुंआंधार अंग्रेजी में मुसलमानों के पक्ष में भाषण कर रहे थे, किसी सदस्य ने उठकर उनको रोक दिया और कहा—"आप मुसलमानों के प्रतिनिधि नहीं हैं, अतः उनकी ओर से किसी भी पक्ष के बारे में बोलने का आपको अधिकार नहीं है, बैठ जाइये।"

जिन्ना चुपचाप वहां से चल दिये और होटल में आकर उदास पड़ गये। अगले दिन प्रातः ही वे कलकत्ते से चल दिये। स्टेशन पर ट्रेन में बैठने पर उनके एक मित्र ने कहा—"आप अभी तक बहुत उदास है?" जिन्ना की आंखे डबडबा आई। उन्होंने उत्तर दिया—"मैं तिरस्कृत हुआ हूं, अब मेरा मार्ग दूसरा है।" ऐसी ही दुखित मनःस्थिति में वे बम्बई लौटे।

## 12. चिरविदा

रतन अपने पति से बहुत उदासीन हो चुकी थी। विवाह के समय जिस प्रबल आकर्षण से खिचकर रतन उनके द्वार पर आई थी, वह उस जैसी भावुक और एकनिष्ठ युवती का एक आदर्श समर्पण था। विवाह के एक वर्ष बाद हो उनके यहां उनकी एकमात्र सन्तान पुत्री दीना ने जन्म लिया। उसे प्राप्त कर उसने अपने ग्रह-सौख्य को और भी सार्थक समझा,

किन्तु आगे चलकर उसका जीवन उस चट्टान से टकराकर पीड़ित होने लगा। अपने पीड़ित मन को शान्ति देने और वातावरण को कुछ हलका बनाने के लिए उसने अकेले ही विदेश-यात्रा की, जिन्ना को साथ नहीं लिया। यूरोप-यात्रा के दौरान घूमती हुई वह जब पेरिस पहुंची तो वहां उसकी भेंट एक अन्य पारसी महिला श्रीमती भिखाईजी कामा से हुई। भिखाईजी कामा भी बम्बई-निवासी थीं, परन्तु देशभक्त होने के कारण ब्रिटिश सरकार ने उन्हें, जब वे लन्दन से अपना आपरेशन कराने के बाद भारत लौटने की तैयारी में थीं, गिरफ्तार करना चाहा। तब वे गुप्त रूप से इंग्लिश चैनल पार करके फ्रांस पहुंचीं। ब्रिटिश सरकार ने फ्रांस सरकार से उन्हें वापस मांगा, परन्तु फ्रांस ने ऐसा नहीं किया। कामा अभी पेरिस में ही थीं कि उन्हें ब्रिटिश सरकार की ओर से भारत में प्रवेश न करने की आज्ञा प्राप्त हुई। वे 35 वर्ष तक अपने देश से निर्वासित रहीं। भिखाईजी कामा बिल्कुल गरम दल की थीं, क्रान्तिकारियों से उनके सम्बन्ध थे। अपने निर्वासनकाल में उन्होंने यूरोप का भ्रमण किया। गरमा-गरम भाषण दिए और आतंकवादियों को सब प्रकार की सहायता, प्रोत्साहन देती रहीं। ऐसी वीर स्वदेशप्रिय देशभक्त नारी से परिचय प्राप्त कर रतन को मानसिक प्रसन्नता हुई। कुछ दिनों तक दोनों महिलाएं राजनैतिक चर्चा और अपनी पारिवारिक बातें एक-दूसरे से कहती-सुनती रहीं।

उन्होंने रतन को बताया कि अंग्रेज भारत की समृद्धि के घुन हैं। उनके अत्याचार का सामना करना ईश्वर की आज्ञा मानना है। भारत की स्त्रियों को संगठित कर उनके जीवन स्तर को उठाना आवश्यक है, जिससे वे स्वतंत्रता-प्राप्ति में पुरुषों के साथ कंधे-से-कन्धा मिलाकर काम करें। जो अपनी स्वतंत्रता खोता है, वह अपना चरित्र भी खो देता है।

रतन यह जानकर उस महिला के प्रति अति श्रद्धावान हो गई कि उन्होंने जर्मनी के स्टुटगार्ट में आयोजित एक सोशलिस्ट कान्फ्रेंस में विदेश में पहली बार भारत का राष्ट्रीय ध्वज स्वयं सर्जित कर और फहराकर अंग्रेजों को चकित कर दिया था। यह राष्ट्रीय ध्वज केसरिया रंग की पृष्ठ भूमि में आठ तारों के साथ बनाया गया था।

यह तेजस्विनी महिला वृद्धावस्था की ओर बढ़ रही थी, परन्तु अभी उनकी वाणी में ओज और पैनापन था। विदा समय रतन ने वन्दना कर

प्रश्न किया—"आप भारत कब लौट रही हैं?"

"मेरा संकल्प है कि मैं अपने देश की स्वतंत्र सरकार के पासपोर्ट पर भारत लौटने का गौरव प्राप्त करूं। मुझे ब्रिटिश पासपोर्ट की आवश्यकता नहीं होगी।"

रतन अपनी इस पेरिस-यात्रा से बहुत खुश थी। मानसिक वेदना अब नहीं थी। वह प्रसन्न और आनंदित हृदय से फिर भारत लौटी। परन्तु जिन्ना के साथ आते ही उसका वह आह्लाद नष्ट हो गया। भावी प्रबल होती है। उसका पति के प्रति पूजा, निष्ठा भावना और गृह-सौख्य का गर्व खंडित हो गया। जिन्ना स्त्री के प्रति शिष्ट अवश्य थे, परन्तु कोमल और भावुक नहीं थे। उनकी अपनी मान्यताएं और राजनीतिक भावनाएं रतन की मान्यताओं और भावनाओं से टकराती रहती थीं। यद्यपि जिन्ना भारत की राजनीति के एक सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति थे, पर वे देश के अन्य मनुष्यों की भांति गांधी के झंडे के नीचे खड़े होने को तैयार नहीं हुए। उनका आत्म-सम्मान उनको वलिदानी सत्याग्रहियों की पंक्ति में कैसे खड़ा होने दे सकता था। रतन ने उन्हें गांधी का साथ देने के लिए बहुत प्रेरित किया, परन्तु वे गांधी से टकराकर अपने पौरुष को सार्थक करना चाहते थे।

रतन का भावुक हृदय मुरझाता चला गया। वह जिन्ना की सुख-सुविधा का गृहिणी की भांति ध्यान रखती थी, परन्तु जिस अनिर्वचनीय आत्मानुभूति से वह प्रतिक्षण आप्यायित रहने की अभिलाषिणी थी, उसमें घुन लग चुका था। वह भारतीय संस्कृति और आध्यात्मिक आत्मसुख की अन्वेषी तेजस्वी नारी थी। उसकी दृष्टि में भारत में बसी सभी जातियां उसी भांति मनुष्य थीं, जिस प्रकार विशाल परिवार में विभिन्न प्राणी रहते हैं, पर वे सबके प्रति आत्मीय प्रेम, प्रतिष्ठा और संगठन की निष्ठा रखते हैं। हिन्दू-मुस्लिम भेद से उसे चिढ़ थी। उसने गांधी के मंत्र को 'मनुष्य पूजित देवता है' हृदयंगम कर लिया था।

अन्त में विवाह के दस वर्ष बाद जिस प्रकार एक दिन वह अपने पिता को प्रणाम कर जिन्ना के द्वार पर आई थी, उसी भांति एक दिन प्रातः की चाय पीकर उसने जिन्ना से विदा ली। जिन्ना एक दिन पूर्व ही कलकत्ता से लौटे थे और क्षुब्ध थे। रतन ने अपने पति की ओर नैराश्यपूर्ण दृष्टि डालकर कहा—"प्रिय जिन्ना, आज मैं आपका गृह त्यागकर जा रही हूं।

जिस प्रकार पितृ-गृह त्यागकर दस वर्ष के लम्बे समय में मैं उनके प्यार से वंचित नहीं रह सकी हूं, उसी प्रकार अब आपसे विदा लेते समय मैं यही चाहती हूं कि आपके प्यार से भी मैं वंचित न रहूं। पति-पत्नी के सम्बन्ध हीं कुछ ऐसे हैं, परन्तु अव मतभेद इतने बढ़ गये हैं कि हमारा पृथकीकरण आवश्यक हो गया है। आशा है कि अधिक विवाद में न पड़कर आप मुझे विदा देंगे। दीना अब नौ वर्ष की है। वह आपके मनोनुकूल आपके पास रहकर शिक्षित हो, इसलिए उसे यहीं छोड़ रही हूं।"

यह कहकर उसने जिन्ना के दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर मस्तक से लगाये और 'चिरविदा' कहकर चल दी। जिन्ना कुछ न कह सके। उनके होंठ हिल रहे थे, परन्तु मानो वे कुर्सी से चिपके हुए थे। वे धीरे-धीरे जाती हुई अपनी पत्नी की पीठ देख रहे थे।

रतन अपने पिता के घर न जाकर ताजमहल होटल में रहने लगी। परन्तु उसका मन वहाँ न लगा। कुछ महीनों बाद वह अपने माता-पिता के साथ फिर यूरोप चल दी। जिन्ना भी अपने पीड़ित हृदय को सहलाने के लिए यूरोप चल दिए। इस यात्रा में दीवान चमनलाल उनके साथ थे। यह अप्रैल 1924 की घटना है। इंग्लैंड पहुंचकर जिन्ना तो आयरलैंड की ओर चल दिये और चमनलाल पेरिस की ओर। रतन अपने माता-पिता से पृथक् होकर पेरिस के एक होटल में रहने लगी थी। जब चमनलाल उससे मिलने उसके होटल पहुंचे तब उन्हें सूचना मिली कि वह अस्पताल में सांघातिक रूप से बीमार पड़ी है। चमनलाल ने वहां जाकर देखा कि वह कमरे में रुग्णशय्या पर एकाकी है और उसके वक्ष पर कोई पुस्तक खुली हुई पड़ी है। उस अप्रतिम युवती को देखकर उन्होंने कहा—"पृथ्वी पर अन्य कोई स्त्री इस सौंदर्य-दीप की समता करने में असमर्थ है।" 106 डिग्री ज्वर में भी उसका सौंदर्य चमक रहा था।

उन्हें देखकर रतन ने क्षीण वाणी में कहा—"चमन, इस पुस्तक का यह पृष्ठ मैं पूरा नहीं पढ़ सकी हूं, जरा इसे पढ़कर सुना दो।"

उन्होंने पुस्तक उठाकर देखी। ऑस्कर वाइल्ड की कविता-पुस्तक थी। खुला अंश 'द हार्लोट्स हाउस' था। चमन ने पढ़कर सुनाया—एंड डाउन द लांग एंड साइलेंट स्ट्रीट, द डॉन विद सिलवर-सैंडल्ड फीट, क्रेप्ट लाइक ए फ्राइटंड गर्ल।

सुनते-सुनते रतन बेहोश हो गई। चमनलाल ने जिन्ना को तार दे दिया और वे आयरलैंड से तुरन्त आ गये। चिकित्सा बदल दी गई और बहुत प्रयत्नों के बाद रतन की प्राण रक्षा हुई। नीरोग होने पर चमनलाल कनाडा चले गये, जिन्ना वहीं रह गये। परन्तु कुछ सप्ताह बाद जब वे कनाडा से पेरिस लौटकर जिन्ना से मिलने गए; तब वे अकेले बैठे थे। उन्होंने पूछा—"पत्नी कहां है?" जिन्ना ने शून्य में देखते हुए कहा—"हम लड़ पड़े और वह बम्बई चली गई।"

बम्बई लौटने पर रतन ताज होटल चली गई और वहीं रहने लगी। परन्तु उसका कोमल हृदय टूट चुका था। वह फिर बीमार हुई और दो महीने बाद स्वर्गस्थ हुई। जिन्ना ने जब उसे कब्र में सुलाया तो उन्होंने सबकी नजर बचाकर अपनी आंखों को पोंछ लिया। घर आकर उन्होंने रतन के सभी स्मृति-चिन्हों को वहां से हटा दिया और अपनी वकालत की फाइलों में रात-दिन जुट गये।

## 13. मस्त शायर

भारत की एक दूसरी मुस्लिम प्रतिभा, सर मोहम्मद इकबाल थे। इकबाल भी जिन्ना की भांति एक प्रतिभाशाली मुस्लिम युवक थे। उन्होंने रंगीन तबियत पाई थी, शायरी भी करते थे। परन्तु उनकी शायरी दोनों प्रकार की होती थी। वे भारत को अपना मुल्क समझकर उसे मादरेवतन और चमन कहते थे। प्यार और हुस्न-परस्ती की शायरी भी उनकी ऊंचे दर्जे की होती थी। उनकी रचनाओं में दार्शनिकता की झलक भी मिलती है। आगे चलकर वे रूस की राज्यक्रांति और मार्क्स से बहुत प्रभावित हुए थे। उनकी रचनायें, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी में लिखी गईं।

इकबाल का जन्म 22, फरवरी 1873 ई० को स्यालकोट पंजाब में हुआ था। उनके पूर्वज काश्मीरी ब्राह्मण थे और काश्मीर में रहते थे, जिन्होंने तीन शताब्दी पूर्व मुस्लिम धर्म ग्रहण कर लिया था। अपने बारे में वे लिखते है : माई बॉडी इज ए रोज फ्राम द पैराडाइज आफ काश्मीर, माई हार्ट फ्राम हेजाज, माई सांग आफ शीराज, लुक एट मी, फार इन इंडिया यू शैल नाट सी, एनअदर सन आफ बिरहमिन हू नोज द सीक्रेट्स, आफ तब-

रिज एंड रम, द बिगाटेड मुल्ला काल्स मी ए काफिर, एंड द काफिर थिंक्स आई एम मुसलमान।

स्यालकोट में स्कूली शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे लाहौर आकर गवर्नमेंट कालेज में भरती हुए और वहां से 1899 में एम० ए० पास किया। कुछ समय बाद उसी कालेज में प्रोफेसर भी हो गए और 6 वर्ष तक उस पद पर रहे। परन्तु उन्हें एक शिक्षक का जीवन व्यतीत करना पसन्द नहीं था। उसके मन में प्रख्यात बैरिस्टर बनने की इच्छा थी, अतः 32 वर्ष की आयु में सन् 1905 में वे इंग्लैंड गए।

उनके पिता ने उनके विद्यार्थी-जीवन में, जब वे 19 वर्ष के ही थे, उनका विवाह कर दिया था। उनकी पत्नी न सुंदर थी, न पढ़ी-लिखी, अतः अपनी पत्नी के प्रति वे तनिक भी आकर्षित नहीं हुए और उसकी उपेक्षा करते रहे। प्यार और हुस्नपरस्ती की शायरी लाहौर के विद्यार्थी-जीवन में चमक उठी थी। ऐसा शायर भला कब उस प्रकार की पत्नी को पसन्द करता! वे लाहौर के सौन्दर्य की हाट हीरामंडी में शाम को आंखें सेंकने निकल जाते थे। उनका लाहौरी जीवन रंगीनियों में व्यतीत होने लगा। शिक्षक का संयमी और पवित्र जीवन निभाना उन्हें कठिन प्रतीत हुआ। इंग्लैंड के विलासी जीवन की बातें भी वे मित्रों से सुनते रहते थे। विवाहित पत्नी से उन्होंने कभी साक्षात नहीं किया, यौवन की तरंग में प्यार की प्यास बुझाने और यूरोप की रंगीनी देखने के लिए वे बैरिस्टरी पढ़ने के विचार से इंग्लैंड पहुंचे।

लन्दन में उनका परिचय दो ऐसी अंग्रेज महिलाओं से हुआ जो वहां की सोसाइटी की प्राण थीं। ये महिलाएं लंदन में आए भारतीय विद्यार्थियों का सब प्रकार से संरक्षण और मार्गदर्शन करती थीं। कठिन समय में उनकी सहायता भी करती थीं। उनके पास बैठकर युवक मातृस्नेह के सुख की अनुभूति करते थे। उनके यहां पार्टी में अनेक युवक-युवतियां आते और परस्पर परिचय प्राप्त करते थे। इकबाल उनके सौन्दर्य, शिष्टाचार और आध्यात्मिक वार्त्तालाप से प्रभावित होकर उनके यहां जाने लगे। एक बार 1907 की पहली अप्रैल का नैशोत्सव उन्होंने बड़ी धूमधाम से मनाया। उस उत्सव में इकबाल को विशेष रूप से निमंत्रित किया गया था। साथ ही उन्होंने अतियाबेगम को भी उस नैशोत्सव में आने का साग्रह निमंत्रण

भेजा। अतिया बेगम ईरान के एक प्रतिष्ठित वंश की सुंदर युवती थी। बम्बई में उनका घर था। सभा-सोसाइटियों में उनकी उपस्थिति और ख्याति प्रसिद्ध थी। उन दिनों वे भी लंदन में अध्ययन कर रही थीं। उनके निमंत्रणपत्र में लिखा गया था कि इस अवसर पर तुम्हारी भेंट भारत के एक खूबसूरत और होनहार नवयुवक इकबाल से कराई जायेगी। यह नौजवान प्यार करने योग्य है।

अतिया बेगम ने पार्टी में सम्मिलित होकर इकबाल का सान्निध्य प्राप्त किया। उसने देखा कि इकबाल केवल सुंदर युवक ही नहीं वह कुशाग्रबुद्धि, अरबी, फारसी, संस्कृत और अंग्रेजी का विद्वान् शायर और मर्यादानिष्ठ हाज़िरजवाब भी है। इस प्रथम भेंट में ही इकबाल अतियाबेगम से प्रेम करने लगे। आगे चलकर तो वह उनकी आराध्य देवी बन गई। यद्यपि अतिया बेगम से उनका विवाह नहीं हुआ, न अतिया बेगम उनको शारीरिक सुख देने की स्थिति में ही पहुंच सकीं, फिर भी उन दोनों ने सच्चे प्रेमी की भांति एक-दूसरे को अपनी आत्मा में रमा लिया और जीवन-भर प्यासे प्रेमी बने रहे। लंदन में एक अन्य अंग्रेज युवती ने भी इकबाल को पार्टी दी। वहां एक भारतीय कुमारी उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने के लिए बहुत सज-संवरकर आई। उसने शरीर पर बहुमूल्य रत्नजटित गहने और रेशमी वस्त्र धारण किए थे। इकबाल को देखते ही वह भावुक हो उठी और उसने भरी पार्टी में आगे बढ़कर इकबाल का हाथ अपने कोमल और सुंदर हाथों में थाम लिया। उसने कहा—"प्यारे इकबाल, मैं केवल तुम्हारे लिए यहां आई हूं।"

अतिया बेगम भी वहां उपस्थित थी। इकबाल ने बड़े कौशल से उसके हाथों को अपने मस्तक पर रखकर कहा—"इस आकस्मिक संयोग से मुझे इतनी अधिक प्रसन्नता हुई है कि अब मैं सम्भवतः प्राणान्त की स्थिति में पहुंच गया हूं।" उनके इस उत्तर से पार्टी में जोर से 'चीरों' की सामूहिक हंसी व्याप्त हो गई और वह नारी अपना हाथ छुड़ाकर पृथक् खड़ी हो गई। अतिया बेगम जो कुछ क्षण पहले हतप्रभ हो गई थी, पुनः अपनी प्रसन्न मुद्रा में आ गई और प्यार से इकबाल का हाथ पकड़कर भोजन की मेज की ओर बढ़ गई। अतिया बेगम के लिए हृदय में प्रेम की पीर लेकर इकबाल अपना शिक्षण समाप्त होने पर भारत लौट आये। अतिया वहीं

पढ़ती रही। मार्ग में जर्मनी से उन्होंने अतिया को पत्र में लिखा—

"जूस्तजू जिस गुल की तड़पाती थी ऐ बुलबुल मुझे, खूबिए-किस्मत से आखिर मिल गया वह गुल मुझे। इश्क की गरमी से शोले वन गये छाले मेरे, खेलते हैं बिल्लियों के साथ अब नाले मेरे। कैद में आया तो हासिल मुझको आजादी हुई दिल के लुट जाने से मेरे घर की आबादी हुई। जो से उस खुर्शीद के अख्तर मेरा ताबिन्दा है, चांदनी जिसकी जियाए-राह ले शर्मिन्दा है।

मेरी शायरी की ये चन्द सतरें तुम्हारे लिए हैं—पर सच पूछो तो शायरी के लिए मेरे दिल में अब कोई उमग बाकी नहीं रही। क्योंकि शायरी में इश्क और हुस्न की जो बढ़िया-से-बढ़िया तस्वीर मैं खींच सकता हूं, तुम उससे भी ऊंची हो। काश, अपना हृदय चीरकर मैं तुम्हें अपना प्रेम दिखा सकता। प्यारी अतिया, उम्मीद है तुम मुझे वह दोगी जिसे पाकर मैं निहाल हो जाऊंगा। हिन्दुस्तान पहुंचकर मैं तुम्हें और भी लिखूंगा।"

भारत पहुंचने पर अलीगढ़ यूनिवर्सिटी ने प्रोफेसरी पेश की, परन्तु उन्होंने इन्कार कर दिया। लाहौर कालेज ने भी उनसे अपना पद पुनः ग्रहण करने का आग्रह किया, परन्तु उन्होंने वह भी स्वीकार नहीं किया। वस्तुतः उनका हृदय दग्ध था। ऐसी मनोवस्था में किसी की चाकरी निष्ठापूर्वक निभा नहीं सकते थे, इसलिए उन्होंने स्वतन्त्र व्यवसाय पसन्द किया। उन्होंने लाहौर में बसकर वहां के हाईकोर्ट में प्रेक्टिस आरम्भ की। उनके हृदय में अतिया के सौन्दर्य और प्रेम की हिलोरें उठ रही थीं।

वे अपनी पत्नी को हृदय में नहीं बसा सके। उनके पिता उन्हें बराबर पत्र लिखते रहते थे कि आकर अपनी पत्नी को ले जाओ और गृहस्थ जीवन व्यतीत करो। परन्तु उन्होंने उनको स्पष्ट उत्तर दे दिया कि आपको मेरी बिना इच्छा यह शादी करने का हक नहीं था। आपने जबर्दस्ती उसे मेरे पल्ले बांध दिया है। मैं उसे अपने साथ रखने को तैयार नहीं हूं। वह चाहे तो भरण-पोषण का खर्च मुझसे लेती रहे। लाहौर में वे एकाकी जीवन यापन करने लगे। कोर्ट से लौटकर वे अपने दोस्त बैरिस्टर मिर्जा जलालुद्दीन की बैठक में पहुंचते। संगीत, साज और शायरी की मण्डली जमती। रात को ग्यारह-बारह बजे अपने घर लौटते।

जीवन-प्रवाह चल रहा था, परन्तु उसमें आनन्द न था, तृप्ति न थी,

प्यार का कहीं सहारा न था। ऐसे ही तड़पते दिनों में उन्होंने एक दिन अतिया बेगम को पत्र में एक शेर लिखकर अपनी प्रेमाग्नि इस प्रकार प्रकट की—आलमें जोशे जूनूं में है रवा क्या-क्या कुछ। कहिए क्या हुक्म है, दीवाना बनूं या न बनूं?

एक दूसरे पत्र में लिखा—तुम मुझसे दूर हो। मेरी दुरवस्था को नहीं देख सकतीं। मेरे हृदय में दिन-रात ज्वाला जलती रहती है। क्या मुझे अपनी पसंद की चीज हासिल करने का हक नहीं है। जी चाहता है कि आत्महत्या कर लूं या इस देश को हमेशा के लिए छोड़कर तुम्हारे पास आ जाऊं या रात-दिन शराब पीकर विवेकहीन होकर पड़ा रहूं।

इन सबके जवाब में अतिया बेगम इकबाल को ढाढ़स बंधाती रही, सहानुभूति प्रकट करती रही और जीवन की नैराश्य भावना को त्यागने का साहस दिलाती रही। अतिया बेगम इकबाल के लिए अप्राप्य वस्तु बनी रही। उसने पत्र में लिखा—फूल की पत्ती से कट सकता है हीरे का जिगर! मर्द-ए-नादान पर कलम-ए-नर्म-ओ नाजुक बेअसर।

इन्हीं दिनों लाहौर में एक दिन महाराजा बख्तसिंह की पोती बिंबा दलीपसिंह ने इकबाल को अपने यहां निमंत्रित करके कहलाया कि मेरी एक अंग्रेज सहेली आपसे मिलने की इच्छा रखती है। अवश्य आइए।

इकबाल वहां गए। पहुंचते ही अंग्रेज युवती ने उन्हें सुन्दर और सुवासित फूलों का गुलदस्ता भेंट किया और मुस्कराकर अभिवादन किया। इकबाल ने कहा वह मस्ते नाज जो फूलों में जा निकलती है, कली-कली की जुबां से दुआ निकलती है।

बिंबा दलीपसिंह ने अंग्रेजी में उसका भावार्थ अपनी सहेली को बताया, तो उसने भावावेश में इकबाल का आलिंगन कर चुम्बन ले लिया। इकबाल ऐसे ही थे, परन्तु यह सब क्षणिक सुख की प्राप्ति थी। उन्हें जीवन-संगिनी की तलाश थी। अन्त में उन्हें एक लड़की मिली। वह काश्मीरी परिवार की सुन्दर और सुसंस्कृत युवती थी, लाहौर के विक्टोरिया कालेज में पढ़ती थी। उसे देखकर इकबाल की तड़प ठंडी हुई। कुछ दिनों बाद उन्होंने उसे विवाह के लिए राजी कर लिया। दुर्भाग्य से किसी ने उन्हें बताया कि यह लड़की शीलभ्रष्ट है।

इकबाल को ठेस लगी और वे दग्ध हृदय लिये दिन बिताने लगे।

भाग्य ने उन्हें फिर एक ऐसी लड़की से मिला दिया जो उन्हें भा गई। उन्होंने उससे विवाह कर लिया। विक्टोरिया कालेज की लड़की ने जब सुना कि इकबाल ने उसे शीलभ्रष्ट समझकर अन्यत्र विवाह किया है, तो उसने एक दर्दभरा खत उन्हें लिखा और अपने पवित्र होने का पूरा विश्वास दिलाया। यह भी कहा कि मैं अब भी शादी करने को तैयार हूं।

इकबाल उस काश्मीरी के प्यासे तो थे ही, सब भांति विश्वास करके उन्होंने उसके साथ भी विवाह कर लिया। काश्मीरी सुन्दरी ने उनकी सब प्यास बुझा दी और वे दीन-दुनिया को भूल उसमें डूबे रहे। इस समय उनकी आयु चालीस के समीप थी।

## 14. खीझ

राजनीति से क्षुब्ध और रतन द्वारा परित्याग से पीड़ित जिन्ना बम्बई में अपनी प्रेक्टिस में पूर्णतः नहीं रम सके। उन्होंने भारत को त्यागकर इंग्लैंड में जा बसने की बात पर विचार किया। वे अपने निर्णय स्वयं ही करते थे, अतः 1931 में अपने मन की बात स्वीकार कर वे बम्बई त्याग इंग्लैंड को चल दिये। साथ में उन्होंने अपनी पुत्री दीना को भी ले लिया। लंदन पहुंचकर वे एक होटल में ठहर गये और रहने के लिए एक सुन्दर बंगले की तलाश करने लगे। सड़कों और गलियों में घूमते-घूमते उन्हें 'वेस्ट हीथ हाउस' पसंद आया और उसकी स्वामिनी अंग्रेज महिला से उसे खरीद लिया। इस मकान को उन्होंने अपनी जरूरतों के मुताबिक सजाया संवारा और पुत्री के साथ अपना घर जमाया। 'प्रिवी कौंसिल' में वे प्रैक्टिस करने लगे। योग्यता उनमें थी ही, कुछ ही दिनों में वे वहां के प्रख्यात वकील प्रसिद्ध हो गये।

इन्हीं दिनों सर मोहम्मद इकबाल भी लंदन में रह रहे थे, परन्तु अब उनका राष्ट्रीय दृष्टिकोण पहले जैसा देशभक्ति पूर्ण नहीं था, वे भी मुस्लिम लीग से प्रभावित हो चुके थे। जिन्ना की उनसे भेंट हुई। जिन्ना की गांधी के प्रति क्रुद्ध भावना देखकर उन्होंने पूछा—"मिस्टर जिन्ना, क्या तुम अब भी गांधी से समझौता करना चाहते हो ?"

"नहीं, लाख बार नहीं ?"

"तब मेरा कहा मानो।"

"मानूंगा, यदि मैं उससे गांधी को परास्त कर सकूं।"

"गांधीजी को ही नहीं, कांग्रेस को तुम लुढ़का सकोगे।"

"तब कहो मित्र मैं क्या करूं?"

"तुम मुसलमानों का मुस्लिम भावना से नेतृत्व करो। हिन्दू-मुस्लिम एकता के जुज से अपने मन को बिलकुल साफ करो। तुम कट्टर मुस्लिम बनो और जिस प्रकार कांग्रेस अंग्रेजों से स्वराज्य मांग रही है, उसी प्रकार तुम भारत और इस्लाम के हित में अंग्रेजों से मुसलमानों के लिए पृथक् प्रदेश मांगो और उसे लेकर अपनी इच्छा से उसका निर्माण करो।"

"लेकिन हिन्दू-भारत और मुस्लिम-भारत दो पृथक् राज्य कैसे बनाये जा सकते हैं?"

"क्या मुश्किल है! पंजाब, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रदेश बलोचिस्तान मुस्लिम बहुल प्रदेशों को मिला भारत से पृथक् किया जा सकता है।"

"यह मुस्लिम राज्य पृथक् होकर प्रगति नहीं कर सकेगा, नवनिर्माण में पिछड़ जायेगा।"

"तुम सारा हिंदुस्तान भी तो नहीं ले सकते, फिर क्यों नहीं इस दूसरे मार्ग का लाभ उठाते?"

"मुस्लिम हिंदुस्तान नाम मुझे रुचिकर नहीं है।"

"नाम तो तुम्हें ये प्रदेश ही दे सकते हैं। देखो पंजाब का P, अफगानिया (उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रदेश) का A, कश्मीर का K, ईरान का I, सिंध का S (कच्छ काठियावाड़ सहित), तुखरितस्तान का T, अफगानिस्तान का A, और उससे संलग्न समस्त नार्दन पठार का N मिला कर Pakistan पाक मुल्क बन जाता है।"

"काश्मीर, ईरान और अफगानिस्तान को क्यों गिनते हो इकबाल?"

"जब तुम हिन्दुस्तान का उत्तर-पश्चिम ले लोगे तो इन मुस्लिम संस्कृति के देशों को अपने प्रचार और प्रयास से अपने मुल्क में मिलाना बहुत आसान होगा। हिन्दुस्तान का पश्चिम लेकर तुम नीचे कन्याकुमारी की ओर न देखना, ऊपर कश्मीर, अफगानिस्तान, ईरान, ईराक की ओर देखना। उधर तुम आसानी से कामयाब होगे, क्योंकि वहां हिंदू नहीं है।"

जिन्ना की आंखें चमकने लगीं। उनका क्षोभ और उदासी दूर होने

लगी। उन्होंने आगे बढ़कर इकबाल के दोनों हाथों को अपने हाथों में कस कर पकड़ लिया—"यू आर राइट इकबाल, दिस इज अवर गोल नाऊ।" इकबाल ने भी जिन्ना से हाथ मिलाते हुए कहा—"देन, वी आल आर विद यू जिन्ना।" लियाकतअली खां का विवाह 1933 में एक शिक्षित और सुन्दर सुसंस्कृत मुस्लिम लड़की राना से हुआ। वे अपनी पत्नी सहित हनीमून मनाने यूरोप-भ्रमण पर गए और इंग्लैंड पहुंचे। वहां उन्होंने जिन्ना से भी भेंट की। जिन्ना राना को देखकर प्रभावित हुए। जितने दिन नव-दम्पति लंदन में रहे, जिन्ना उनके साथ सांध्य एवं रात्रि की गोष्ठियों में भाग लेते रहे।

एक दिन डिनर के बाद श्रीमती राना ने जिन्ना से कहा—"यह आपके लिए सुखद होगा कि अब आप फिर शादी करें।"

"कोई दूसरी राना मिले तो अवश्य।" जिन्ना ने कहा।

लंदन से विदा होते समय तक लियाकतअली ने जिन्ना को भारत लौटने और मुस्लिम लीग की बागडोर संभालने के लिए राजी कर लिया। लियाकतअली ने कहा—"मैं आपका अनुगत होकर आपके सभी आदेशों का पालन मुस्लिम जगत् से कराऊंगा। आप अपनी उदासीनता छोड़िये। इकबाल की पाकिस्तानी योजना को सफल बनाना बहुत जरूरी है। गांधी को आप तभी परास्त कर सकते हैं।"

जिन्ना ने आवेश में कहा—"डैम विद गांधी, आई विल रिटर्न।"

और वे नये जोश, नये मंसूबे लेकर लंदन का मकान बेचकर 1935 में पुनः भारत लौट आये और मुस्लिम लीग का नेतृत्व प्राप्त कर कांग्रेस से मोर्चा जमाया। वे अविवेकी होकर गांधी के कार्यों को निर्मूल करने में शक्ति लगाने लगे।

जब कांग्रेस ने पार्लियामेंटरी प्रोग्राम आरम्भ किया तब जिन्ना ने पूर्ण रूप से मुस्लिम जनता का नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया। 1936-37 के चुनाव में कांग्रेस की पूर्ण सफलता और लीग की पराजय से उनका क्रोध और दुराग्रही राजनीति-भाव बढ़ गया। उन्होंने कांग्रेस को 'फासिस्ट हिन्दुराज' कहा। उन्होंने मुस्लिम जनता में धार्मिक जोश उभारकर भारत में उपद्रव खड़े कर दिये। द्वितीय महायुद्ध ने जिन्ना को सुनहरी मौका दिया। अंग्रेज सरकार ने उसकी पीठ थपथपाई। सरकारी दफ्तरों तथा

आई० सी० एस० में बड़ी संख्या में मुस्लिम-लीगी मुसलमान लिये गये।

मुस्लिम लीग का नेतृत्व हाथ में लेते ही जिन्ना ने अंग्रेजों से कहा कि यदि वे भारत को छोड़कर जाना चाहते हैं तो भारत के शासन की बागडोर कांग्रेस के हाथों नहीं सौंपी जा सकती। भारत के सात करोड़ मुसलमान कांग्रेस के हिन्दूराज्य को पसन्द नहीं करते। उनके लिए पृथक् राज्य बनाकर उन्हें देना होगा। जिन्ना ने पाकिस्तान की बात उठा तो दी, परन्तु पाकिस्तान का वास्तविक रूप वे स्वयं भी नहीं समझ पाये थे। पाकिस्तान की बात कहना उनकी हठधर्मी का प्रतीक मात्र था। 1944 में जब उनसे पाकिस्तान पर विस्तार से प्रकाश डालने के लिए कहा गया तो उन्होंने उत्तर दिया कि—"मुझे इस पर कुछ अध्ययन करना पड़ेगा।" पाकिस्तान की सही-सही रूपरेखा 1947 के जून में लॉर्ड एटली के भारत छोड़ने की घोषणा के बाद ही बन सकी थी।

जिन्ना की इस विपरीत राजनीति से दुःखी होकर उन्हीं के भारत-हितैषी मुस्लिम साथियों ने दुःख प्रकट किया था। अल्लाबख्स ने कहा—"सात करोड़ मुसलमानी कौम शुरू से इसी देश की संतान हैं। इसी की मिट्टी से पैदा हुई है। इसलिए जिन्ना की पाकिस्तान-योजना यहां के हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए अहितकर है।" सर सिकंदर हयात खां ने कहा—"पाकिस्तान दुर्भाग्यता के सिवा और कुछ नहीं हो सकता।" सर फजुलहक ने कहा—"लीग का वातावरण इस्लाम की भित्ति पर नहीं खड़ा है, बल्कि जिन्ना की अपवित्र भावनाओं का गृह है। यह एक आदमी की व्यक्तिगत इच्छाओं पर बना और वह आदमी—जिन्ना नर-पिसाच और क्रूर व्यक्ति है। पाकिस्तान हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए घातक है।" अमेरिका, एशिया, कैनाडा और स्विटजरलैंड के उदाहरणों को जिन्ना ने ठुकरा दिया। कांग्रेस के 'भारत छोड़ो' आंदोलन को उन्होंने अंग्रेजों और मुस्लिम समाज के लिए समान रूप से घातक समझा।

## 15. हंसबुद्धि

पोर्तगीज, डच, फ्रेंच और अंग्रेज इन चार यूरोपीयन जातियों ने भारत पर अधिकार जमाने का यत्न किया, पर विजयी अंग्रेज ही हुए। इसका

कारण वह औद्योगिक क्रान्ति थी, जो पन्द्रहवी शताब्दी में सभी यूरोपियन देशों में आरम्भ हो गई थी और अंग्रेज उसमें सबसे बढ़ गए थे। इंग्लैंड की सरकारों और मध्यम वर्ग के लोगों ने इससे बहुत पहले ही राजा पर अपने अधिकार 'मैग्नाकार्टा' द्वारा प्राप्त कर लिये थे। सत्रहवीं शताब्दी में इंग्लैंड में जब राजा चार्ल्स ने इन अधिकारों में हस्तक्षेप करना चाहा तो अंग्रेजों ने अपने इस राजा का सर काट लिया। इसके बाद इंग्लैंड के राजा के अधिकार कम ही होते गये, पर चतुर अंग्रेजों को प्रजातंत्र की स्थापना समुचित प्रतीत न हुई, उन्हें विजित प्रदेशों और उपनिवेशों पर स्वेच्छाधिकारी शासन के लिए एक राजा की आवश्यकता थी। बिना राज संस्था के वे भारत पर भी अपना अबाध शासन कायम नहीं रख सकते थे। जब कभी पार्लियामेंट गलती करती, झट उससे बच निकलने के लिए राजा से ढाल का काम लिया जाता था। लार्ड कर्जन ने जब हिन्दुओं का महत्त्व बढ़ाने के लिए वंग-भंग किया तो सारे भारत में आग लग गई। परन्तु यह दमन करने का अवसर नहीं था। यूरोप में युद्धाग्नि सुलग रही थी और युद्ध आरंभ होने के पहले ही भारत के क्षोभ को दूर करना श्रेयस्कर था, इसलिए जार्ज पंचम को भारत भेजकर वंग-भंग रद्द करा दिया गया। राजा का यह अच्छे-से-अच्छा कूटनीतिक उपयोग था।

पुर्तगाल और स्पेन पोप के फंदे में फंसे रहकर धर्मान्ध बन गये। हालैंड बहुत छोटा-सा देश था। फ्रांस में राज सत्ता के विपरीत रक्त-क्रांति हो गई, इन सब संयोगों से भारत में पैर फैलाने के लिए अंग्रेजों को बहुत अवसर मिल गए और प्रगति की दौड़ में अंग्रेज यूरोप के सब देशों से आगे बढ़ गये।

पाश्चात्य संस्कृति से हमारा संबंध अंग्रेजों ही के द्वारा हुआ। इंग्लैंड में मध्यम वर्ग ने व्यापार पर अधिकार करके सरकारी सत्ता पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। हमारे राजा ऐयाश और घमंडी थे, साधारण बात पर लड़ पड़ते थे, परन्तु अंग्रेजों को युद्ध नहीं, व्यापार चाहिए था, युद्ध करना भी पड़ता तो व्यापार के लिए। अभिमान तो उन्हें था ही नहीं। मुगलों के दरबार तथा पेशवाओं के यहां उसका मजाक उड़ाया गया, अपमान भी किया गया, पर वे पीछे नहीं हटे। सबसे बड़ी बात यह है कि व्यापार के कारण उनका हाथ कभी तंग न रहा, पैसा हमेशा उनके हाथों में खेलता रहा। इससे वे सेना का वेतन सदा समय पर देते रहे, जबकि राजा महाराजाओं

की सेनाओं को वेतन कभी समय पर मिलता ही न था। इसी से अंग्रेजों की सेना व्यवस्थित रही, सदैव वे जीतते ही गए।

जब अंग्रेजों द्वारा पाश्चात्य संस्कृति की लहरें भारत में काबुल तक जा टकराईं तो भारत की केवल राजनीतिक ही नहीं बल्कि धार्मिक और सामाजिक स्थिति पर भी भारी क्रांतिकारी प्रभाव पड़ा। उन स्वेच्छाचारी राजाओं और नवाबों के काल में लोगों को अंग्रेजों की राजनीति बहुत भा गई, और आबाल-वृद्ध कहने लगे कि अंग्रेजी राज्य बहुत अच्छा है। पर उसके साथ ही बाइबिल अपना काम करने लगी। लोग धर्मपरिवर्तन करने लगे। खासकर दलित हरिजन।

इसी समय राजा राममोहन राय ने बाइबिल की तो नहीं, पर उसकी एकेश्वरी सत्ता को आत्मसात् किया। यह मुस्लिम धर्म के अनुकूल भी था। उन्होंने इसके लिए उपनिषदों का सहारा लिया और ब्राह्मसमाज की स्थापना की। उन्होंने जाति-भेद का बहिष्कृत किया। इसका पण्डित-मण्डली ने विरोध अवश्य किया, पर शिक्षित वर्ग ने इस धर्म को अपनाया। परंतु अंग्रेजी भाषा के द्वारा अंग्रेजी इतिहास के अध्ययन करने से ब्राह्मसमाज की प्रगति रुक गई। अंग्रेजों ने मैकाले के आग्रह से भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रारंभ किया और नौकरी की आशा से उच्चवर्ग के हिन्दू अंग्रेजी सीखने लगे। अंग्रेजों ने इस बात का कोई प्रतिबन्ध न रखा था कि ईसाई बने बिना नौकरी न दी जायेगी। फलतः अंग्रेजी पढ़-पढ़कर उच्चवर्गीय हिन्दू ही अंग्रेजों के नौकर बनकर अंग्रेजी राज्य की जड़ जमाने में बड़े कारगर प्रमाणित हुए। इनके द्वारा साहब लोगों को भारतीय घरों में कहां क्या हो रहा है, यह सब मालूम हो गया। चूंकि सरकारी नौकरियों में ब्राह्म धर्म का उपयोग न हुआ तथा उसमें ब्राह्मों के लिए कोई स्थान ही न था, इससे ब्राह्म धर्म को समर्थन नहीं मिला, उसकी प्रगति रुक गई। केवल विलायत गए लोग, जिन्हें ब्राह्मण जाति-बहिष्कृत कर देते थे, ब्राह्म धर्म अंगीकार कर लेते थे।

अंग्रेजी सीखने पर हिन्दुओं को यह पता लगा कि अंग्रेजों के उत्कर्ष का मूल कारण उनकी बाइबिल या ईसाई धर्म नहीं, देशभक्ति है। अंग्रेज अपने देश के लिए बड़ी-से-बड़ी हानि उठा सकता है, पर हिन्दू नहीं। हिन्दू अधिक-से-अधिक अपने धर्म के लिए कष्ट सह सकता था। देश की कल्पना

तो उन्हें थी ही नहीं। इसी से उन्होंने मुसलमानों को देश विजय करने दिया, पर धर्म के लिए कटते-मरते रहे। अब अंग्रेजी भावना से ओत-प्रोत शिक्षित हिन्दू वर्ग में देश-भक्ति का भाव उदित हुआ और उनमें यह धारणा उदित हुई कि हिन्दुओं में देशाभिमान जाग्रत किया जाय तथा देश की एकता के लिए एक धर्म और एक भाषा की आवश्यकता को भी उन्होंने अनुभव किया। इस कार्य में सबसे बढ़कर ऊंची आवाज उठाई स्वामी दयानन्द और उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने। उन्होंने उत्तर भारत में एक प्रबल शक्ति का स्रोत प्रवाहित कर दिया—जिसमें एक वैदिक धर्म, जो सब हिन्दुओं से समर्थित था, एक आर्य भाषा और एकदेशीयता की भावना मूलबद्ध थी। सारा देश सामूहिक रूप से दयानन्द की आवाज से जाग उठा।

इसके बाद ही दक्षिण में लोकमान्य तिलक ने शिवाजी-उत्सव और गणेश-उत्सवों की नींव डाली। शिवाजी मराठा राज्य के संस्थापक थे और गणेश पेशवाओं के देवता। दोनों ही महाराष्ट्र में बहुत लोकप्रिय थे। इसलिए दोनों को ही आगे लाकर हिंदुओं में देशभक्ति और राष्ट्राभिमान जाग्रत करने की युक्ति लोकमान्य तिलक ने खोज निकाली। इसका अच्छा फल हुआ।

गांधीजी ने अपना कार्य भारत में नहीं, दक्षिण अफ्रीका में प्रारम्भ किया। वे एक मुसलमान व्यापारी के मुकदमे की पैरवी करने को वहां गए और वहीं वकालत करने लगे। वहां अपने देशभाइयों के साथ अत्याचार होते देखकर उनका प्रतिकार करने को सत्याग्रह के प्रयोग करने लगे। दक्षिण अफ्रीका में नीग्रो लोग बहुत थे, पर वे बुद्धिमान नहीं थे, इसलिए वे गोरों का काम अच्छी तरह नहीं करते थे। इससे अंग्रेजों ने भारत से बहुत-से मजदूर, कुली निश्चित अवधि तक नौकरी करने की प्रतिज्ञा पर भरती किए। अवधि समाप्त होने पर भी वे लोग वहीं बसकर छोटा-मोटा व्यवसाय करने लगे। उनमें से कुछ समृद्ध भी हो गए। इन सबके प्रति वहां के गोरे अधिकारियों का बड़ा भारी पक्षपात था। गांधीजी ने वहां बहुत-कुछ किया। बाद में महायुद्ध आरम्भ होने पर वह भारत लौट आए और स्वराज्य के लिए समूचे भारत में सत्याग्रह करने का आयोजन करने लगे। परन्तु उनके मार्ग में बड़ी कठिनाइयां थीं। जिसमें सबसे बड़ी कठिनाई

हिन्दू-मुसलमानों की फूट थी। परन्तु सन् 1916 में लखनऊ में कौंसिल के स्थानों के सम्बन्ध में हिंदू-मुसलमानों में समझौता हो गया, उधर यूरोपीय महायुद्ध की समाप्ति पर तुर्की के समर्थन में भारतीय मुसलमानों ने खिलाफत-आंदोलन प्रारम्भ कर दिया। इसी समय अंग्रेजों ने रौलट-ऐक्ट पास करके भारत के नरमदली नेताओं को नाराज कर दिया। इन सब परिस्थितियों से लाभ उठाकर गांधीजी ने भारत में सत्याग्रह का श्रीगणेश किया। पंजाब में डायर द्वारा अमृतसर का हत्याकाण्ड हुआ तथा वहां मार्शल ला द्वारा दमन किया गया। अब पंजाब का मार्शल ला और हत्याकाण्ड, खिलाफत-आंदोलन, रौलट ऐक्ट का विरोध, ये सब कारण एकत्र होने से गांधीजी का सत्याग्रह सहसा तीव्र हो उठा। संसार की आंखें उधर जा लगीं, अंग्रेज भी घबरा गए। पर इसी समय चौराचोरी-काण्ड हो गया और गांधीजी ने सत्याग्रह स्थगित कर दिया—अंग्रेजों का संकट टल गया, उन्होंने अवसर पाकर गांधीजी को जेल में डाल दिया।

दो वर्ष बाद जब गांधीजी बाहर आये तो उन्होंने खादी, राष्ट्रीय शिक्षा-प्रचार, हिन्दू-मुस्लिम-एकता और अस्पृश्यता-निवारण—इन चार विधायक कार्यों का भारत में प्रसार किया।

सन् 1929 में लाहौर कांग्रेस में नेहरू पहली बार अध्यक्ष-पद पर बैठे। उन्होंने तब कांग्रेस का चार्ज अपने पिता से लिया, जो एक वर्ष पूर्व कलकत्ता कांग्रेस की अध्यक्षता कर चुके थे। यही वह अधिवेशन था जिसमें मोतीलाल नेहरू ने भारत के संविधान के बारे में 'नेहरू-आयोग' की रिपोर्ट पेश की थी। यह रिपोर्ट एक औपनिवेशिक दर्जे के आधार पर तैयार की गई थी। इसलिए उनकी सिफारिशें भी इसी ढंग की थीं। उस समय सुभाषचन्द्र बोस ने उसका विरोध किया और कहा कि यह एक प्रकार से विदेशी बन्धन में बंधे रहने की स्वीकृति-मात्र ही थी—बस जरा से बंधन ढीले करने-भर की मांग थी। सुभाषचन्द्र चाहते थे कि भारत को पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति हो। उस समय तक गांधीजी भी ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में बंधे रहना श्रेयस्कर समझते थे, परन्तु सुभाष ने उनसे भी टक्कर ली। उस समय कांग्रेस में फूट पड़ते-पड़ते रह गई और यह तय हुआ कि यदि भारत सरकार एक वर्ष की अवधि में भारत को औपनिवेशिक दर्जा न दे, तो पूर्ण स्वराज्य का झण्डा खड़ा कर दिया जाय।

उस समय नेहरू भी सुभाष के साथ थे, पर वह अपने पूज्य पिता और गांधीजी का विरोध न कर सके। गांधीजी ने भी उन्हें इसका मूल्य चुका दिया, उन्हें अधिवेशन का अध्यक्ष बना दिया। कांग्रेस के उस अधिवेशन में उन्होंने पूर्ण स्वराज्य की मांग की और समाजवादी परिपाटी भी अपनाई, पर गांधीजी के विरोध से वह लाचार थे। उन्हें सबसे मिलकर काम करना पड़ा, पर उनमें गांधीजी की हंस-बुद्धि का प्रभाव रहा। गांधी ने हंस की भांति मोती चुगे थे, सभी प्रांतों से चोटी के उत्तम पुरुषों को चुनकर अपना अनुयायी और साथी बनाया था। मद्रास से राजाजी, बम्बई से सरदार पटेल, बंगाल से चितरंजन दास, उत्तर प्रदेश से मोतीलाल नेहरू और पंजाब से लाला लाजपतराय। और ये सब अपने जीवन के अन्त तक उनके साथ रहे, उनके प्रति एकनिष्ठ रहे। कांग्रेस-अधिवेशन समाप्त होने पर गांधीजी ने 11 शर्तें वायसराय क समक्ष पश कीं, तथा मार्च नें नमक-सत्याग्रह छेड़ दिया। एक महीने में ही उन्हें पकड़कर यरवदा जेल में ठूंस दिया गया। परन्तु सत्याग्रह का वेग कम नहीं हुआ। वायसराय को मार्शल ला स्थगित करना पड़ा और अंततः गांधीजी के साथ विराम-संधि करनी पड़ी। संधि-वार्तालाप के लिए गांधीजी इंग्लैंड गए। वहां उनका अपूर्व स्वागत हुआ। बादशाह ने भी उनसे भेंट की। परन्तु संघर्ष बढ़ता ही गया, मिटा नहीं।

सन् 1926 में जब जिन्ना ने पहले-पहल भारत की ओर से मुंह मोड़-कर दुनिया के मुसलमानों का एक संगठन पाकिस्तान के नाम से करना ठाना, तभी महामना मालवीयजी ने इस आंदोलन की गहराई पर विचार किया और उन्होंने सोचा कि यदि जिन्ना इस आंदोलन में सफल हुए और उन्होंने दुनिया के मुसलमानों को संगठित कर लिया तो हिंदुओं का कहीं ठौर-ठिकाना न रह जाएगा। उन्होंने एक नई सूझबूझ का परिचय दिया कि एशिया के उन सब देशों को, जिनके निवासी बौद्ध हैं, भारत के प्रति अभि-मुख किया जाय—यह कहकर कि भारत बुद्ध का जन्मस्थान होने के कारण बौद्ध देशों के लिए पवित्र तीर्थ है। उन्होंने बौद्ध गया का उद्धार किया, काशी सारनाथ में बौद्ध-केन्द्र की स्थापना की, दिल्ली में लक्ष्मीनारायण के मंदिर के साथ बुद्ध का मंदिर भी बनवाया, तथा हिंदू महासभा के प्रधान पद के लिए बौद्धस्थविर को लंका से बुला भेजा। इन सब प्रयत्नों का यह शुभ परिणाम हुआ कि समस्त बौद्ध-एशिया सांस्कृतिक दृष्टि से भारत के

प्रति उन्मुख हुआ। जिन्ना का पाकिस्तान तो महायुद्धों के चक्कर में फंसकर हवा हो गया, पर भारत एशियाई बौद्ध-देशों का तीर्थ बन गया। इसके बाद जब भारत स्वतंत्र हुआ, तो एशियाई बौद्ध-देशों के अतिरिक्त अन्य देशों का भी वह राजनीतिक तीर्थ बन गया।

प्रारम्भ में मुसलमानों में इकबाल ने भारतीयता के गीत गाए पर मुसलमानों में वह भावना जड़ न जमा सकी। मुसलमानों ने भारत को देश देवता नहीं माना, वह उनका 'अधिदैवत' नहीं बना, न उनमें देशाभिमान जाग्रत हुआ। जहां हिंदू भारत को 'मातृभूमि' समझकर उसकी पूजा कर रहे थे, वहां मुसलमान उसे ऐसा नहीं समझ रहे थे। इसीने पहले खिलाफत, फिर पाकिस्तान के विभाजन और विभाजन ने ऐतिहासिक रक्त-रात को जन्म दिया। अंग्रेजी राज्य में जहां हिंदुओं में देश-भक्ति के कारण देश के प्रति बलिदान की भावना का उदय हुआ, वहां मुसलमानों के मन में पृथक् राज्य फिर से प्राप्त करने के हौसले जागने लगे। इस भावना से उन्होंने प्रथम सिंध प्रांत को पृथक् करने की मांग की, फिर बंगाल और पंजाब में बहुमत प्राप्त करने की, और इस प्रकार देश-हित के सम्बन्ध में वे हिं ओं से संगी-साथी न रहे—प्रतिद्वन्द्वी हो गए, और उन्होंने आग्रहपूर्वक उसी प्रकार भारत का बंटवारा भी कर डाला—जैसे दो भाई अपने पिता की संपत्ति का बंटवारा कर लेते हैं। देश-भक्ति, देशाभिमान, देश अधिदैवत की उन्होंने तनिक भी चिंता न की। यदि हिंदू-मुसलमान दोनों में पाश्चात्यों जैसा देशाभिमान भारत में जाग्रत हो पाता तो भारत के हिंदू-मुसलमान एक होकर एक ओर तो हिंदुस्तान के चारों ओर बिखरे हुए बौद्ध देशों तथा मुस्लिम देशों को कुचल डालते और साथ ही दूसरी ओर भारत की स्वतंत्रता के काल में हिंदू-मुसलमानों ने परस्पर जो रक्त बहाया, वह न बहाकर उन्हें जेर करनेवाले अंग्रेजों का रक्त बहता और तब कदाचित् एक भी अंग्रेज बच्चा जीवित स्वदेश न लौटता। परन्तु पड़ोसी देशों के सौभाग्य तथा अंग्रेजों के पुण्य प्रताप से वैसी देश-भक्ति की स्थापना हिंदू-मुसलमानों में फलीभूत न हुई और अंग्रेज हिंदू-मुसलमानों को अपने ही रक्त में स्नान करता छोड़कर फूलों और प्रशंसाओं से लदे-फदे सुख-चैन से सही सलामत अपने घर लौट गए।

सन् 1931 के आरम्भ में देश की राजनैतिक स्थिति अंग्रेज सरकार

की दमननीति के कारण बहुत विषम में थी। गुजरात प्रांत के बारदोली ताल्लुके में किसानों पर की गई अमानुषिक क्रूरताओं से कांग्रेस की सारी शक्ति इसी आंदोलन पर केंद्रित हो चुकी थी। विदेशी वस्त्र के बहिष्कार और नमक-कानून-भंग आंदोलन भी कांग्रेस के हाथ में थे। बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी जेलों में ठूंसे जा रहे थे। अंग्रेज सरकार गोलमेज परिषद् करने का नाटक तो कर रही थी, परन्तु वह हिंदू-मुस्लिम पृथक् वर्गों के अतिरिक्त अछूतों का भी एक तीसरा वर्ग बनाने की कूटनीति चल रही थी। गांधीजी की दृष्टि भारत के महान भविष्य को बहुत दूर तक देख रही थी। अंत में तत्कालीन वाइसराय लार्ड इर्विन ने गांधीजी को समझाने के लिए बुलाया। 15 दिन तक बातें होती रहीं, आशा-निराशा से बीच अन्त में 5 मार्च, 1931 को गांधी-इर्विन समझौता हुआ। इस समझौते में जिन्ना का पृथक् दृष्टिकोण था। वे गांधीजी के प्रति और भी कटु होते जा रहे थे। समझौते के सम्पन्न होने पर अगले दिन देश-विदेश के अनेक पत्रकारों एवं उनके प्रतिनिधियों ने गांधीजी से उनके पूर्ण स्वराज्य के विषय में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से भेंट की और उनसे विभिन्न प्रश्न पूछे गए।

अधिकतर प्रश्न अमेरिका के एसोसिएटेड प्रेस के जेम्स मिल्स और लंदन टाइम्स के पीटर्सन ने ही किए। आरम्भ में जेम्स मिल्स ने प्रश्न किया—"आपने 'पूर्ण स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया और कहा कि इसका अर्थ अंग्रेजी भाषा में साधारणतः 'पूर्ण स्वाधीनता' होता है, सो पूर्णस्वराज्य की आपकी सही व्याख्या क्या है ?"

"मैं आपको इसका ठीक उत्तर नहीं दे सकता, क्योंकि अंग्रेजी भाषा में ऐसा कोई शब्द नहीं जो 'पूर्ण स्वराज्य' के भाव का व्यक्त कर सके। स्वराज्य का मूल अर्थ तो स्वराज्य अर्थात स्वशासन है। स्वाधीनता से इस प्रकार का कोई अर्थ नहीं निकलता। स्वराज्य का मतलब है आत्म-नियंत्रित शासन, और पूर्ण का मतलब पूरा। कोई बराबरी का शब्द न मिलने के कारण हमने अंग्रेजी में 'कम्प्लीट इंडिपेंडेंस' शब्दों को चुन लिया है, जिन्हें हर कोई समझता है। पूर्ण स्वराज्य का यह मतलब नहीं कि किसी भी राष्ट्र से या इंग्लैंड से ही कहिए, सम्बन्ध नहीं रखा जा सकता। लेकिन यह सम्बन्ध स्वेच्छा से और दोनों के लाभ के लिए ही हो सकता है।"

"क्या कांग्रेस के लिए यह युक्तिसंगत होगा कि वह पूर्ण स्वाधीनता के प्रस्ताव, को जो उसने मद्रास, कलकत्ता तथा लाहौर अधिवेशनों में पास किया था, फिर से दोहराया जाए ?"

"अवश्य ।"

"आप द्वितीय गोलमेज परिषद् का भारत में होना पसंद करते हैं या इंग्लैंड में ?"

"इसका दारोमदार परिस्थिति पर है। साधारण रूप से यह चाहूंगा कि गोलमेज का पूर्वार्द्ध भारत में हो, समाप्ति लंदन में ।"

"क्या आप नियमित रूप से गोलमेज परिषद् में भाग लेंगे ?"

"मैं आशा तो करता हूं और शायद हो भी यही ।"

"क्या आप गोलमेज परिषद् के निर्णयों से आशान्वित होकर ब्रिटिश सरकार से सुलह करने के लिए झुककर हाथ बढ़ा रहे हैं ?"

"ब्रिटिश सरकार भारत के जन-बल और अहिंसा-आंदोलन की शक्ति को बहुत-कुछ समझ गई है और वह सुलह की इच्छा रखती है । वह विश्वास करती है कि बल से भारत पर शासन नहीं हो सकेगा ।"

"क्या आप परिषद् में पूर्ण स्वराज्य के लिए जोर देंगे ?"

"यदि हम उसके लिए जोर न दें, तब तो हमें अपने अस्तित्व से ही इन्कार कर देना चाहिए ।"

"क्या इस समझौते को आप अपने अब तक के जीवन की सबसे बड़ी सफलता समझते हैं ?" महात्माजी हंस पडे । उन्होंने कहा —"मुझे यह ज्ञात नहीं कि मैंने जीवन में कौन-कौन-सी सफलताएं पाईं और यह उन में से एक है या नहीं ।"

"यदि आप पूर्ण स्वराज्य प्राप्त कर लें तो आप उसे अपने जीवन की ऐसी सफलता मान सकेंगे ?"

"मैं समझता हूं कि यदि ऐसा हो सके तो मैं उसे अवश्य ऐसा मानूंगा ।"

"क्या आप अपने जीवन-काल में पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने की आशा रखते हैं ?"

"यकीनन, जरूर । पाश्चात्य विचारों के अनुसार तो मैं अपने को 62 साल का युवक मानता हूं ।"

"क्या आपकी राय में समझौते के फलस्वरूप विदेशी कपड़े का

बहिष्कार ढीला कर देना चाहिए ?"

"नहीं, कदापि नहीं। विदेशी कपड़े का बहिष्कार राजनैतिक अस्त्र नहीं है। यह तो भारत के एकमात्र सहायक धन्धे—चरखे की उन्नति के लिए है। उसका कार्य सिर्फ विदेशी कपड़े के भारत आगमन से सम्बन्ध रखता है।"

"गोलमेज में जाने से पूर्व क्या आप हिंदू-मुस्लिम समस्या को सुलझा लेने की आशा करते हैं ?"

"यह मेरी आकांक्षा तो है, लेकिन मैं यह नहीं कह सकता कि यह कहां तक पूरी हो सकेगी। परिषद् में एकता होना मेरी राय में मुश्किल है, क्योंकि जिन्ना हमारे अनुकूल नहीं हैं।"

"क्या हिंदू-मुस्लिम एकता स्थापित करने में बरसों लगेंगे ?"

"नहीं मेरा ऐसा ख्याल नहीं है। हिंदू तथा मुसलमान जनता में कोई नाइत्तफाकी नहीं है। नाइत्तफाकी केवल सतह पर है और इसका अधिक महत्त्व इसलिए है कि सतह पर जो आदमी हैं वे वही हैं, जो भारत के राजनैतिक दिमाग के प्रतिनिधि हैं।"

"क्या आप इस बात की सम्भावना देखते हैं कि जब पूर्ण स्वराज्य मिल जायेगा तो राष्ट्रीय सेना हटा दी जायेगी ?"

"गगन बिहारी आदमी का उत्तर है तो अवश्य, लेकिन मेरा विचार है कि अपने जीवन में ऐसा न देख सकूंगा। बिलकुल सेना न रखने की स्थिति तक पहुंचने के लिए भारतीय राष्ट्र को कई युगों तक ठहरना होगा। श्रद्धा की कमी के कारण मेरी यह शंकाशीलता हो लेकिन ऐसा असम्भव नहीं। वर्तमान सामूहिक जागृति की तथा अहिंसा पर लोगों के अन्दर कायम रहने की – अपवादों को छोड़ दीजिये—किसे आशा थी ? इसी बात से मुझे कुछ आशा होती है कि निकट भविष्य में भारतीय नेता हिम्मत के साथ कह सकेंगे कि अब हमें किसी सेना की जरूरत नहीं। मुल्की कामों के लिए पुलिस पर्याप्त समझी जानी चाहिए।"

"क्या आप भावी सरकार के प्रधान मंत्री बनना स्वीकार करेंगे ?"

"नहीं, यह पद नौजवानों और मजबूत आदमियों के लिए है।"

"लेकिन यदि जनता आपको चाहे और अड़ जायं तो ?"

"तो मैं आप जैसे पत्रकारों की शरण ढूंढूंगा।"

"यदि पूर्ण स्वराज्य स्थापित हो गया तो क्या आप सब मशीनरी उड़ा देंगे ?" एक अमरीकी पत्रकार ने प्रश्न किया।

"नहीं, बिलकुल नहीं। उड़ा देने के बजाय मैं तो अमेरिका को शायद और भी अधिक मशीनरी का आर्डर दूंगा। और कौन कह सकता है कि मैं ब्रिटिश मशीनरी को ही तरजीह दूं।"

"स्वराज्य मिलने के पूर्व क्या आप आश्रम लौटेंगे ?"

"मेरा विचार आश्रम देखने का है। जब तक पूर्ण स्वराज्य का मेरा व्रत पूरा न हो जायगा, तब तक मैं आश्रम में नहीं रहूंगा।"

"सेना-सम्बन्धी प्रश्न के आपके उत्तर से क्या यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आप इस बात की सम्भावना नहीं देखते कि अन्तर्राष्ट्रीय पेचीदगियों को सुलझाने में अहिंसा उपयोगी अस्त्र हो सकता है ?"

"अगर संसार के अन्य राष्ट्रों की भांति भारत में भी सेना हो तो मेरा खयाल है कि अहिंसा ऐसा अस्त्र बन जायगा। सबसे पहले विचारों में परिवर्तन होगा। कार्य तो सदा धीरे-धीरे होता है। ज्यों-ज्यों समय जायगा, राष्ट्र विचार-विमर्श तथा पंचायती फैसलों पर अधिकाधिक विश्वास करेंगे और शनैः-शनैः सेनाओं पर कम। सम्भव है कि सेनाएं केवल दर्शन-मात्र की ही चीज रह जायं, जिस प्रकार खिलौने किसी पुरानी चीज के अवशेष होते हैं, न कि राष्ट्र की रक्षा के साधन।"

## 16. प्रायश्चित्त

इकबाल प्रेम पथ पर चलने से पहले देश-भक्ति की ओर उन्मुख थे ! हिन्दू-मुसलमान का भेद उनमें नहीं था। गांधीजी के स्वदेशी आंदोलन में उन्होंने आरम्भ में साथ दिया, उनकी शायरी ने भारत के करोड़ों युवकों को देश पर जूझ मरने को प्रेरित किया।

इकबाल में आत्मत्याग की भावना नहीं थी, इसी से स्वदेश के प्रति प्रगाढ़ भक्ति उनमें स्थिर नहीं रह सकी। मुस्लिम लीग और जिन्ना की कांग्रेस-विरोधी भावनओं में वे भी बह गए और उन्होंने अपनी शायरी स्वदेश प्रेम से हटाकर प्यार और हुस्न की ओर मोड़ दी। आगे चलकर तो उन्होंने जिन्दा को पाकिस्तान बनाने की ही सम्मति दी। गांधीजी को इससे

दुःख हुआ। जवाहरलाल नेहरू भी अपने इस प्रतिभाशाली साथी के भटक जाने से क्षुब्ध हुए। मृत्यु के कुछ मास पूर्व जनवरी 1938 में इकबाल ने अपने पुराने साथी जवाहरलाल नेहरू को मिलने के लिए बुला भेजा। नेहरूजी उन दिनों बहुत व्यस्त थे, परन्तु इकबाल का मृत्युशय्या से भेजा गया संदेश सुनकर वे सब प्रोग्राम रद्द कर उनसे मिलने पहुंचे। इकबाल के नेहरूजी से राजनीतिक मतभेद थे, परन्तु इस समय मतभेद उनके दिमाग में नहीं थे। उन्होंने अतिप्रिय मित्र की भांति अपने सीने से लगाकर उन्हें प्यार किया। उनकी आंखें बरस रही थीं। नेहरू भी आकुल हो उठे। उन्होंने अपने आंसुओं से रूमाल को तर करके कहा—"दोस्त हिम्मत न हारो, अपनी सेहत को सुधारो।"

परन्तु इकबाल को अपने जीवन-दीप के बुझने का आभास मिल चुका था। उन्होंने नेहरू का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—"प्यारे भाई, अपना प्यार मुझे दो। इंसान भूलकर भटक जाता है—मैं भी भटक गया था। तुम सही रास्ते पर चलते रहे, तुमने मुल्क की सही खिदमत की। पर मैं चाहता हूं कि एक सीख देता जाऊं!"

"कहो दोस्त, क्या चाहते हो?"

"हिंदुस्तान एक दिन आजाद होगा और तुम्हारे हाथों में उसकी बागडोर होगी। मुल्क को समाजवाद की ओर ले जाने की कोशिश करना। हिंदुस्तान में समाजवाद से ही खुशहाली होगी।"

नेहरू उनकी इस बात से खुश हुए। उन्होंने कहा—"समाजवाद को मैं पसंद करता हूं। तुम्हारी शायरी पर मुझे फख्र है।"

"शायरी अब कहां? वह तो मेरे साथ ही दफ़न होगी?"

"शायरी कभी दफ़न नहीं होती। मुल्क तुम्हारे प्यारे गीत, 'सारे जहां से अच्छा हिंदुस्तान हमारा, हम बुलबुले हैं उसकी, वह गुलिस्तां हमारा' को हमेशा गायेगा और तुम्हें जिंदा रखेगा।"

"मुझे अफसोस है दोस्त कि मैं भटककर अपने प्यारे दोस्तों से बिछुड़ गया। अपने इस प्यारे गीत को भी भूल गया। वे भी क्या दिन थे जब जवानी शुरू हो रही थी और हिंदुस्तान की मिट्टी मेरे अन्दर जोशेवतन गा रही थी। नेहरू दोस्त, मेरे नेक कामों को ही याद रखना।"

और कुछ क्षण चुप रहकर आंखें मूंद अतीत में डूब गए। फिर कहा—

"परंतु मेरी एक अमर रचना तो रह ही गई—'द बुक ऑफ ए फॉरगॉटन प्रॉफेट' आखिरी वक्त में उसी की सूझी, पर लिख न सका। सेहत ने साथ न दिया।" नेहरू ने उन्हें अधिक बोलने और सोचने से मना किया। उन्होंने कहा—"इकबाल मुल्क का शायर है, वह मुल्क की शान है। इकबाल अमर है।"

इकबाल के चेहरे पर सुर्खी आई। वे हंस पड़े उन्होंने कहा—"अब मुझे लगता है कि मैंने मुल्क के लिए कुछ अच्छा किया, क्योंकि मेरा सच्चा दोस्त आखिरी वक्त में मेरे पास है और वह मुझसे खुश है। शायद मेरा यह शेर तुम्हारे लिए ही है—हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पै रोती है। बड़ी मुश्किल से होता है, चमन में दीदावर पैदा।" नेहरू उठ खड़े हुए। उन्होंने आहिस्ता से इकबाल की कोरों के आंसू अपने रूमाल से पोंछे और उनके दोनों हाथों को अपने दोनों हाथों में लेकर प्यार से थपथपाकर चल दिए। 21 अप्रैल, 1938 को यह प्रतिभा चल बसी।

## 17. भिन्न से अभिन्न

सन् 42 का मार्च समाप्त हो रहा था। आकाश वसन्त के उज्ज्वल आलोक से दीप्तिमान था और वायु वसन्त के पुष्पों के सौरभ से सुरभित थी। इलाहाबाद के आनन्द-भवन में उस दिन भारत की राजनीति के महाप्राण एकत्र थे, जिससे न केवल वहां की शोभा ही अलौकिक हो गई थी, प्रत्युत वहां एक अनिर्वचनीय नवजीवन का संसार हो रहा था और वहां उपस्थित प्रत्येक प्राणी राजनीति का दुरूह भार मस्तिष्क में लिये उस शोभा से विमोहित और जीवनीशक्ति से प्रभावित हो रहा था।

श्री जवाहरलाल नेहरू की पुत्री इन्दिरा का उस दिन विवाह था। असाधारण पिता की असाधारण पुत्री का यह असाधारण विवाह था। इस विवाह के मूल में एक राजनीतिक मैत्री का पुट था। प्रचलित रूढ़िवाद का एक शिष्ट विद्रोह था जिसमें मर्यादा, पद्धति और मानवता की सम्पूर्ण भावनाओं का समावेश था। वर-वधु भिन्न समाज, भिन्न धर्म, भिन्न संस्कृति के सुशिक्षित प्रतिनिधि व्यक्ति थे और इन वे भिन्नताओं की किसी भी बाधा से अवरुद्ध न होकर अभिन्न हो रहे थे। धर्म, समाज और
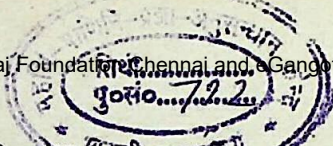
संस्कृति की इन भिन्नताओं की उन्होंने उपेक्षा नहीं की थी, उन्हें दलित नहीं किया था, उनकी अवज्ञा नहीं की थी, प्रत्युत उनका शृंगार किया था उनका पूजन किया था, और ये सम्पूर्ण भिन्नताएं इन असाधारण वर-वधू की शालीनता और सहिष्णुता से प्रभावित हो, आज इस सजीव समारोह की शोभा-विस्तार कर रही थीं, अभिन्नता की प्रतीक हो रही थीं, और भारत के भावी राष्ट्र को कोमल और भावुक मानव सामंजस्य का संदेश दे रही थीं—जिनका केन्द्र-बिन्दु इस शताब्दी के अप्रतिम संत के अप्रतिम शिष्य जवाहरलाल नेहरू थे।

आनन्द-भवन के पार्श्व में लगे एक चबूतरे पर वह शोभा विस्तृत की गई थी। शुभ्र भावना और शुभ्र वसना उस शोभा की विशेषता थी। शुभ्र वर्ण, एकता, समता, शान्ति और प्रतिभा का प्रतीक है। उस समारोह का शुभ्र शृंगार हिमाचल के तुषार-धवल शृंगों की भांति नेत्रों को आप्यायित कर रहा था। उज्ज्वल कदली स्तम्भों के पार्श्व में श्वेत चित्रकारी से विचित्र घटों की अपूर्व शोभा, श्वेत फूलों के ही तोरण, बन्दनवार और मालाओं के सहयोग से सहज ही मन को विभोर कर रही थी। सारी ही सजावट का मेरुदंड श्वेत था और वह वर-वधू और समागत महाप्राण जनों के शुभ खादी-परिधान से प्रतिबिम्बत होकर मन में एक सात्विक आनंद और तृप्ति का प्रभाव उत्पन्न कर रहा था।

संध्या की भीनी और सुरभित वायु बह रही थी। बहुत-से बिजली के लट्टू उज्ज्वल प्रकाश फेंक रहे थे। आनन्द-भवन के लॉन में उस विवाह-समारोह के उपलक्ष्य में भोज हो रहा था। भोज में एकत्र जन अपने-अपने गुट बनाकर विविध विषयों पर चर्चा कर रहे थे।

एक दुबले-पतले भद्रजन, खादी की शेरवानी संभालते हुए और नकली दांतों से टोस्ट काटने की चेष्टा करते-करते साथी से बोले—"भई, यह शादी हुई खूब, पर हमने सुना था नेहरूजी इन्दिरा की शादी नहशपाशा के शाहजादे के साथ किया चाहते थे?"

दूसरे साथी ने अपनी गंजी खोपड़ी को सहलाते हुए हंसकर कहा—"खूब बेपर की उड़ाते हो यार, पहले यह तो पता लगाओ कि नहशपाशा के कोई लड़का-वाला है भी?"

"अब हो या न हो, इस विषय में सिरदर्दी करने से फायदा? शादी हो

गई और खूब हुई ?"

तीसरे महाशय मेज के उस कोने पर बैठे मिठाइयां साफ कर रहे थे। वे बीच में बोल उठे—"शादी हुई तो, पर कुछ हुई नहीं।"

"इसका क्या मतलब ?"

"मतलब यह है कि यह शादी कानूनन नाजायज है," उन्होंने अपनी वकालत की गम्भीरता चेहरे पर लाकर कहा।

"कैसे नाजायज है साहब ?"

"इस तरह कि न तो यह शादी हिन्दू धर्म-शास्त्र के अनुकूल है न आर्य विवाह कानून के। यह एक बिलकुल ही नई निराली पद्धति है।"

"हरगिज नहीं जनाब, कुल काम वैदिक विधि से हुआ है। वेद आर्यों का सबसे प्राचीन धर्म-ग्रंथ है और सब काम उसी के अनुसार हुए हैं।"

"वह तो हुए भाई जान, मगर कानूनी नजर से तो गलत है। यह शादी कानूनी तौर पर नाजायज है। पंडितजी को सिविल .रिज ऐक्ट की विधि से रजिस्ट्री करानी चाहिए थी।"

"ओह, यह बात है ? क्या पंडितजी से उनके मित्रों ने यह बात कही थी।"

"कही थी परंतु उन्होंने दलील दी कि इस नकली कार्रवाई की कोई जरूरत नहीं है, यदि यह ठीक है तो फिर यही ठीक और यदि यह ठीक नहीं है तो वह भी ठीक नहीं है।"

"यही तो उनकी जिद है। वह दुनिया से निराली बात कहते हैं।"

"वह सिद्धांत के आधार पर ही कहते हैं। लोगों को निराली इसलिए मालूम होती है कि लोग रूढ़ियों के गुलाम हैं, पुरानी लीक पीटते चले आए हैं, आनेवाली नई दुनिया के रास्ते के रोड़े हैं।"

"बजा फर्माते हैं आप, वे नई दुनिया के रास्ते के रोड़े हैं। और साहब आप शायद सड़क की लालटेन हैं, जो इस नई दुनिया की राह पर चलने वालों को रोशनी देते हैं ?"

वकील साहब का गुस्सा देखकर प्रश्नकर्ता खिलखिलाकर हंस पड़े। हंसने से उनकी बतीसी खिसक गई। उसे ठीक करके वह जल्दी-जल्दी चाय के घूंट पीने लगे। शहनाई में पूर्वी की तान लहरा रही थी। चारों ओर अपने-अपने गुट में लोग जो बातचीत कर रहे थे, उसकी गुनगुनाहट भौरों

की गुंजन की भांति कर्णप्रिय प्रतीत हो रही थी। वकील साहब कुछ कहने ही वाले थे कि एक व्यक्ति ने आकर उनसे कहा—"जल्दी आइए आप, काटजू साहब और राजेन्द्र बाबू इसी गाड़ी से दिल्ली जा रहे हैं !"

वकील साहब ने अचकचा कर पूछा—"क्यों ? इसी वक्त क्यों ?" अन्य सज्जन भी उत्सुक होकर देखने लगे। आने वाले व्यक्ति ने कहा—"अभी दिल्ली से टेलीफोन आया है, सर स्टेफर्ड क्रिप्स दिल्ली आ पहुंचे हैं और बातचीत कल ही शुरू होने वाली है। सभी नेता कल सुबह दिल्ली पहुंच रहे हैं। संभवतः पंडितजी भी अभी जायेंगे। उनके प्राइवेट सेक्रेट्री हवाई जहाज में तीन सीट रिजर्व कराने फोन पर गये हैं।"

"तब तो समझना चाहिए भाई, नई दुनिया का रास्ता आज ही खुल गया।" उन्होंने हंसकर साथ वाले खद्दरधारी सज्जन से कहा—"चलिए साहब, आप इन प्यालियों का मोह छोड़िये। चलकर देखा जाय उधर बड़े-बड़े लोग कि~ उधेड़-बुन में लगे हैं।" सब लोग एकदम उठ खड़े हुए और विवाह वेदी के समीप आए। जवाहरलाल ने लाजा होम करते हुए वेदी के ऊपर बैठे पुरोहित की ओर लक्ष्य करके मुस्कराते हुए कहा—"यह होम भारतीय राष्ट्र को एक दृढ़ सूत्र में बांधने के लिए है।"

परन्तु बापू ने घड़ी निकालकर समय देखा और पूछा—"अब कितनी देर बाकी है ?" फिर विनोदपूर्ण दृष्टि से पुरोहित की ओर देखा और मन्द स्मित करके कहा—"अब अधिक समय तक ठहर नहीं सकते। हमें अभी दिल्ली रवाना होना है।" राजेन्द्रप्रसाद ने हंसकर कहा—"बापू शुभ कार्य का प्रारम्भ शुभ कार्य से होगा। आज इन्दिरा के साथ-ही-साथ हम सब स्वाधीनता के पथ पर एक नया कदम बढ़ा रहे हैं। यदि क्रिप्स सचमुच ही स्वाधीनता का सच्चा संदेश लेकर आए हैं और अंग्रेज ईमानदारी से भारत की स्वाधीनता का द्वार उन्मुक्त कर रहे हैं, तो हमें आशा करनी चाहिए कि भारत के स्वाधीन होने में अब देर नहीं है।"

बापू ने मन्द स्वर में कहा—"मैं आशावादी हूं और मैं समझता हूं कि भारत शीघ्र स्वाधीन होगा। हम उसे देखेंगे और मेरा ऐसा विचार है कि क्रिप्स हमारे अनुकूल संदेश लेकर आए हैं।" सरदार पटेल बोल उठे—"अंग्रेजों के संदेश सदैव ही शुभ होते हैं। हम देखेंगे और फिर विचार करेंगे। मैं आशावादी नहीं हूं, मैं तो एक सिपाही हूं। मैं उस समय तक युद्ध

किए जाऊंगा जब तक कि मुझे प्राप्तव्य न मिलेगा।"

जवाहरलाल ने हंसकर कहा—"मैं आपके साथ हूं।"

विवाह का मांगलिक वातावरण एकबारगी ही राजनीतिक चर्चा से भर गया। पुरोहित ने हाथ ऊंचा करके कहा—"सब कोई वर-वधू को आशीर्वाद दीजिए।" सबने एक स्वर से कहा—"इस विवाह के साथ हम एक नये युग में प्रवेश करते हैं और आशा करते हैं कि वह सुख और समृद्धि का युग होगा।"

मंगल-कार्य समाप्त हुआ। समागत महिलाओं ने वर-वधू पर फूलों की वर्षा की और मंगल गीत गाये। वेदी से उठकर सब लोग लान के मध्य में एक बड़ी-सी टेबल के चारों ओर एकत्रित हो गये। वहां काफी भीड़ जमा हो गई थी। पण्डित जी व्यस्त भाव से अनेक आदमियों को विविध आदेश दे रहे थे। बीच-बीच में नेताओं से बातचीत भी करते जाते थे।

भीड़ में से एक व्यक्ति ने कहा—"रूस को लड़ाई में फंसानेवाला जादूगर दिल्ली में आया है, वह स्वराज्य देगा या सुराग, यह पीछे जाना जायेगा।" पण्डित जी ने उत्तेजित होकर नुक्ताचीनी करनेवाले व्यक्ति की ओर देखा और कहा—"आप पहले ही से विरोधी कल्पनाएं न करें, कल क्या होगा यह हम नहीं जानते। परन्तु आज हम जो कुछ करने जा रहे हैं, उसके औचित्य पर हमें भली-भांति विचार करना चाहिए। हमें कोई अधिकार नहीं कि हम किसी की नीयत पर आक्षेप करें या अविश्वास की भूमिका मन में लेकर किसी से बातचीत करें।" राजनीति के धुरन्धर और प्रगतिशील नेताओं ने अपने-अपने बिस्तर बांधने की तैयारियां कीं। उस समय दिल्ली की ओर प्रत्येक की दृष्टि लगी हुई थी।

## 18. दुर्भाग्यपूर्ण हठ

1943 के द्वितीय युद्ध-काल में पंजाब, सिंध, सीमाप्रांत, बंगाल और आसाम में यद्यपि मुस्लिम लीगी मंत्रिमंडल शासन कर रहे थे, परन्तु किसी भी प्रांत की असेम्बली में मुस्लिम लीगी सदस्यों का बहुमत नहीं था। पांचों मंत्रिमंडल ब्रिटिश सरकार के कृपापूर्ण प्रभाव से कायम हुए थे। अंग्रेज इन मंत्रिमंडलों द्वारा युद्ध-काल में राजनैतिक बाधाएं उत्पन्न करके कांग्रेस

की शक्ति नष्ट करना चाहते थे—परन्तु उनका यह षड्यन्त्र सफल नहीं हुआ। ये पांचों मंत्रिमण्डल मुस्लिमलीगी होते हुए भी भारत में फैले समस्त मुसलमानों को आकर्षित न कर सके। उनका शासन पंगु ही बना रहा। ज्यों-ज्यों भारतीयों को राजसत्ता सौंपी जाने लगी, जिन्ना के लिए अपने पृथक् राष्ट्र 'पाकिस्तान' की रूपरेखा स्पष्ट रूप से प्रकट करने का समय आता गया। अभी तक उस पर अस्पष्ट और रहस्य का पर्दा पड़ा हुआ था।

29 फरवरी, 1944 को 'न्यूज क्रानिकल' के प्रतिनिधि ने उनकी 'पाकिस्तान' की व्याख्या जानने के लिए भेंट करके कुछ प्रश्न किए—"क्या भारत की वर्तमान राजनैतिक अवस्था से आप संतुष्ट हैं?"

"सरकार वर्तमान स्थिति से सन्तुष्ट जान पड़ती है और वह कोई कदम उठाना नहीं चाहती। कांग्रेस गैरकानूनी घोषित कर दी गई है और उसमे अपनी तरफ से किसी हृदय-परिवर्तन का परिचय नहीं दिया है।"

"सरकार कांग्रेस से बातचीत क्यों नहीं शुरू करती? या वह राजगोपालाचार्य जैसे व्यक्ति को, जिसने आपकी पाकिस्तान की मांग के सिद्धांत को—हिन्दू-मुसलमानों के दो पृथक् राज्यों को—मान लिया है; गांधी जी से मिलकर उन्हें अपने मत में परिवर्तन करने के लिए राजी करने का मौका क्यों नहीं देती?"

"इसका मतलब यह हुआ कि जब तक गांधी जी को राजी नहीं किया जाता, तब तक सरकार हमारी उचित मांग को स्वीकार न करेगी। यह तर्क हम नहीं मान सकते। जहां तक सरकार का सम्बन्ध है, मैं नहीं कह सकता कि उसकी नीति क्या है, किन्तु यदि सरकार आपके सुझाव को मान ले तो इसका मतलब यह होगा कि जीत कांग्रेस की हुई है और सरकार कांग्रेस के बिना आगे नहीं बढ़ सकती।"

"क्या किया जाय?"

"यदि ब्रिटिश सरकार सच्चे हृदय से भारत में शान्ति स्थापित करने को उत्सुक है तो उसे भारत को दो स्वाधीन राष्ट्रों में बांट देना चाहिए। पाकिस्तान मुसलमानों के लिए, जिसमें देश का एक चौथाई भाग शरीक होगा, और हिन्दुस्तान हिन्दुओं के लिए, जिसमें समस्त भारत का तीन चौथाई भाग होगा।

"परन्तु भारत को दो देशों में बांटकर कमजोर बनाना या शत्रु के आक्रमण का शिकार बना देना कभी वांछनीय नही हो सकता ?"

"मैं नहीं मानता कि भारत को जवर्दस्ती एक रखकर उसे अधिक सुरक्षित बनाया जा सकता है। सच तो यह है कि इस हालत में उस पर आक्रमण का खतरा ज्यादा होगा, क्योंकि हिन्दू और मुसलमानों में कभी सद्भावना नहीं हो सकती। हिन्दू और मुसलमानों के लिए एक ही देश में रहना या शासन-संघ में सहयोग करना असम्भव है। ब्रिटेन वर्षों से हिन्दुस्तान को एक राष्ट्र का रूप देने के लिए प्रयत्नशील रहा है, किन्तु उसे असफलता ही मिली है। अब उसे भारत में दो राष्ट्रों का अस्तित्व मान लेना चाहिए।"

"पर आप जानते हैं कि कांग्रेस और हिन्दू उसे कभी न मानेंगे। यदि सरकार इस प्रकार की कोई योजना अमल में लाती है, तो हिन्दू और कांग्रेस सत्याग्रह शुरू कर देते है और तब हिंसा और गृह युद्ध की संभावना उत्पन्न हो जाती है ?"

"नहीं, ऐसा कुछ नहीं होगा। यदि ब्रिटिश सरकार पाकिस्तान और हिन्दुस्तान अलग-अलग कायम कर दे तो कांग्रेस और हिंदू उसे तीन महीने के भीतर स्वीकार कर लेंगे। दूसरे लफ्जों में सरकार चाहे तो कांग्रेस की शेखी कुछ ही समय में भुला सकती है। सच तो यह है कि मुस्लिम बहुमत वाले पांच प्रांतों में पाकिस्तान के सिद्धांत के अनुसार पहले ही कार्य हो रहा है। इसके मुस्लिमलीग मंत्रिमण्डलों में हिंदू मन्त्री भी कार्य कर रहे हैं। पाकिस्तान से सभी का लाभ है। निश्चय ही हिंदुओं को इसमें आपत्ति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि तीन चौथाई भारत पर उनका अधिकार होगा। उनका देश भूमि और जनसंख्या के विचार से रूस और चीन को छोड़कर संसार में सबसे विशाल होगा।

"परन्तु गृह-युद्ध छिड़ने में कोई कसर न रहेगी। आप एक भारतीय अलसटर को जन्म देंगे, जिस पर हिन्दू अखण्ड भारत का नारा उठाकर आक्रमण कर सकते हैं ?"

"इससे मैं सहमत नहीं हूं। परन्तु नये विधान के अन्तर्गत एक परिवर्तन-काल भी होगा और इस काल में जहां तक सशस्त्र सेना और विदेशी सम्बन्धों का ताल्लुक है, ब्रिटिश सत्ता सर्वोपरि रहेगी। परिवर्तन-काल की

लम्बाई इस बात पर निर्भर रहेगी कि दोनों राष्ट्र ब्रिटेन के साथ अपने सम्बन्ध तय करने में कितना समय लगाते हैं। अंत में दोनों भारतीय राष्ट्र ब्रिटेन से उसी प्रकार संधि करें, जिस प्रकार मिस्र ने स्वाधीनता प्राप्त करते समय की थी।"

"यदि उस समय ब्रिटेन ने तर्क उपस्थित किया कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान पड़ोसियों के रूप में नहीं रह सकते और भारत से अपना अधिकार न हटाया जाय, तब क्या होगा ?"

"यह हो सकता है, पर इसकी संभावना नहीं जान पड़ती। यदि ऐसा हुआ भी तो हमें वह आंतरिक स्वाधीनता मिली होगी, जिससे आजकल हम वंचित हैं। एक पृथक् राष्ट्र और स्वाधीन उपनिवेश के रूप में हम ब्रिटिश सरकार से समझौता करने की उत्तम स्थिति में रहेंगे, जो कम-से-कम वर्तमान गतिरोध से तो अच्छी होगी।"

"जब ब्रिटेन यह कहता है कि वह भारत को जल्दी-से-जल्दी स्वाधीनता देना चाहता है, तब आप उस पर विश्वास कर सकते हैं ?"

"मैं ब्रिटेन की नेकनीयती पर उस वक्त यकीन करूंगा जब वह भारत का बंटवारा करके हिन्दू और मुसलमान दोनों को आजादी देगा।"

उपर्युक्त वार्तालाप के एक सप्ताह बाद जिन्ना ने उसमें व्यक्त किए विचारों को बदलकर कहा कि—"देश का बंटवारा करके अंग्रेज यहीं बने रहें।" इसका स्पष्ट अभिप्राय था कि आवश्यकता पड़ने पर अंग्रेज पाकिस्तान की तरफदारी करते रहें।

## 19. उपेक्षा

सन् 1946 के मई मास के आरंभ में एक मनोरम प्रभात में काश्मीर के एक शानदार होटल में दो आदमी एकाग्रचित्त हो मेज पर फैले हुए एक मानचित्र को देखने में तन्मय थे। उनमें से एक मिस्टर जिन्ना थे। वे बीच बीच में लाल पेंसिल से उसमें कहीं-कहीं चिह्न करते जाते थे। दूसरे व्यक्ति लाहौर के छैला युवक ननकू नवाब थे, जो बड़ी गम्भीरता से मिस्टर जिन्ना के संकेतों को हृदयंगम कर रहे थे। नवाब की लाहौर और श्रीनगर दोनों शहरों में हवेलियां थीं। बातचीत नहीं हो रही थीं। कमरे का द्वार भीतर से

बंद था। अंत में जिन्ना ने सन्नाटा भंग किया। उन्होंने कहा—"नवाब, हिंदुस्तान का यह सब हिस्सा काटकर हरा रंग दिया जायेगा और तब हमारा पाकिस्तान बनने का ख्वाब पूरा होगा।"

"परन्तु आपने काश्मीर की वादियों को इसमें शामिल कैसे कर लिया। रियासतें तो बंटवारे में शामिल नहीं हो रही हैं।"

"अभी न सही, लेकिन बंटवारे के बाद काश्मीर हमें लेना होगा?"

"क्या जबर्दस्ती?"

"नहीं राजी से, जब काश्मीर की राजनीति की लगाम तुम्हारे हाथ में है, तब बंटवारा होते ही तुम पाकिस्तान में आ मिलो।"

यह सुनकर नवाब साहब कुछ हतप्रभ हुए। उन्होंने कहा—"कायदे-आजम, काश्मीर मेरा है और मेरा रहेगा।"

"इसका मतलब?"

"नेशनल कांफ्रेंस 1931 से काश्मीर को अपने हाथ में लेने की कोशिश कर रही है।"

"तुम नेशनल कांफ्रेंस को मुस्लिम लीग में बदल लो। मैं वादा करता हूं कि तुम काश्मीर की कुर्सी पर बैठे रहोगे!"

"क्या पाकिस्तान सरकार के अधीन?"

"हां।"

"नहीं कायदेआजम, मेरा ख्याब दूसरा है, आपका दूसरा। काश्मीर सिर्फ मेरा है मेरा।"

"लेकिन रियासतों के पाकिस्तान या हिन्द में शामिल होने का अधिकार उनके राजाओं पर छोड़ा जा रहा है, वहां की प्रजा पर नहीं।"

"अभी आप नेशनल कांफ्रेंस को मुस्लिम लीग में बदलने की बात कह रहे थे?"

"हां, क्योंकि मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान बनवा लिया, वह अपनी नीति से काश्मीर को भी ले सकती है, पर तुम्हारी नेशनल कांफ्रेंस नहीं। काश्मीर में नेशनल कांफ्रेंस कामयाब नहीं हो सकती।"

"मैं इसे नहीं मानता।"

"नवाब, मालूम होता है अपनी नासमझी से तुम मेरे इस नक्शे को अधूरा ही रहने दोगे। तुम्हारी नेशनल कांफ्रेंस अधूरी और बेबुनियाद है।

ये अंग्रेज हिन्दुस्तान छोड़कर जा रहे हैं। तुम समझते हो उन्होंने मुस्लिम लीग को पाकिस्तान दिया है। नहीं, उन्होंने जिन्ना को पाकिस्तान दिया है। इस समय वे जिन्ना की हर बात पूरी करने को तैयार हैं, क्योंकि मुल्क में फूट का वीज बोना उनके हित में है। 1857 के गदर में उन्होंने हिंदुओं पर भरोसा किया। सिखों ने उनका साथ दिया। लेकिन बाद में उन्होंने अपनी धारणा बदलकर मुसलमानों को अपना दोस्त समझा, क्योंकि मुसलमान स्वदेश-प्रेम से पाक-साफ थे। मुसलमानों को अलग करने का बीज 1906 में बोया गया, जबकि मुस्लिम लीग की बुनियाद रखी गई। 1923 से यह लीग मेरे साथ है। गांधी से खीजी हुई अंग्रेज सरकार मेरी सहायक है। गांधी को मैंने नफरत से दुत्कार दिया। आज चालीस साल बाद मुस्लिम लीग ने जिन्ना के हाथों विजय पाई है। जिन्ना ने पाकिस्तान पा लिया। तुम राजनीति की इस चाल को समझो नवाब और मेरा साथ दो।"

कायदेआजम के वाक्चातुर्य के आगे नवाब की बुद्धि काम नहीं दे रही थी। परन्तु नवाब दूसरे जिन्ना बनने का सुनहरी स्वप्न देख रहे थे। वे लाहौर को छोड़कर काश्मीर की राजनीति में घुस-पैठ करके वहीं बसना चाहते थे। वे महाराजा की गुड्डी काटकर काश्मीर की कुर्सी पर बैठने का स्वप्न देख रहे थे। वे साहस करके हंस पड़े।

जिन्ना की त्यौरियां चढ़ गईं। उन्होंने नाराजी से कहा—"तुम गांधी और कांग्रेस के भ्रम में पड़े हो। तुमने उनके कहने से स्टेट पीपल्स कांफ्रेंस बनाई, आन्दोलन किया, जेल गये। उन्हीं के कहने से पीपल्स कांफ्रेंस को नेशनल कांफ्रेंस नाम दिया और अब तुम समझते हो कि स्वराज्य मिलने पर वे तुम्हारे सिर पर ताज रख देंगे?"

जिन्ना का आवेश बढ़ गया था। वे अपने क्रोध को रोक नहीं सके। उन्होंने फिर कहा—"सारा हिंदुस्तान एक बड़ा देश है, उसमें बड़े-बड़े सूबे हैं। उनकी कल्चर अलग-अलग होने पर भी वे भारतीय हैं। यह मैं ही था जिसने इस इकाई में से मुसलमानों को अलग कर डाला और मुसलमानों के लिए पाकिस्तान बना लिया। परन्तु काश्मीर के मुसलमान हिन्दुस्तान से अपने को अलग नहीं मान सकते। यहां हिंदू भी मुसलमान हैं और मुसलमान भी हिन्दू हैं। काश्मीर हिन्द की शान है। यह शान अब हिन्द की न होकर पाकिस्तान की होनी चाहिए। मैंने गांधी को, जवाहर को, अंग्रेज सरकार

को नफरत से देखा है। लेकिन नवाब मैं सच कहता हूं कि मेरी भावना तुम्हारे साथ वैसी नहीं है।"

नवाब ने कहा—"कायदेआजम को मैं भी इज्जत से देखता और अपना वुजुर्ग मानता हूं, मगर मैं आजाद पंछी हूं। मैं काश्मीर में किसी की साझेदारी नहीं चाहता। अंग्रेजों को भारत से विदा होने दो, उसी के बाद महाराजा को विदा करना मेरा काम है।"

"तुम पागल हुए हो नवाब। यह काम तुमसे नहीं होगा। काश्मीर इस नक्शे के हरे रंग में जरूर रंगा जायेगा और यह काम मुझे अभी करना होगा। जब मैं पंजाब को हरा रंगते-रंगते काश्मीर में पहुंचूंगा, तब तुम अपने आज के फैसले पर अफसोस करोगे।"

इतना कहकर जिन्ना उठ खड़े हुए। उन्होंने मेज पर फैले हुए नक्शे को समेटकर अपनी मुट्ठी में दाब लिया और क्रोधपूर्ण दृष्टि नवाब के ऊपर डालकर चल दिये। नवाब उपेक्षा से मुस्करा उठे।

## 20. देश-विभाजन

कांग्रेस के आंदोलन तथा अन्य अनेक राजनैतिक कारणों से अंग्रेजों के भारत छोड़ने की बात स्पष्ट होती गई। जिन्ना गांधी के विरोध में कटु से कटुतर होते गए। जब भी गांधी जी ने उससे हिन्दू-मुस्लिम समस्या के समाधान की चर्चा की, वे रूखा उत्तर देते गए। वे लगातार किन्तु व्यर्थ ही दो राष्ट्रों के सिद्धांत और सम्पूर्ण जनता के आम मतसंग्रह के बिना ही देश के बंटवारे के सिद्धांत को मानने की जिद गांधी जी से करते रहे। गांधी जी जिन्ना से कुछ भी न पा सके। इसके बाद मुस्लिम लीग ने 16 मई, 1946 को भारत-विभाजन की प्रथम रूपरेखा तैयार की। 16 अक्तूबर, 1905 को बंग-भंग किया गया था। उसके कर्त्ता अंग्रेज थे, पर अब भारत-भंग के कर्त्ता जिन्ना थे। धारा सभाओं में विधान-परिषद् के सदस्यों का चुनाव जुलाई 1946 में समाप्त कर दिया। इसकी प्रतिक्रिया ने जिन्ना को क्रोधान्वित कर दिया। अंग्रेज सरकार भी जिन्ना को महत्त्व दे रही थी। जुलाई के अंत में लीग ने अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन योजनाओं में भाग लेने से इंकार कर दिया। लीग ने स्पष्ट घोषित कर दिया कि पाकिस्तान तलवार

के जोर से लिया जायेगा और इसका प्रयोग 'प्रत्यक्ष कार्यवाही' (डाइरेक्ट एक्शन) करके दिखाया जायेगा ।

16 अगस्त, 1946 इस 'प्रत्यक्ष कार्यवाही' का दिन घोषित कर दिया गया । उन दिनों बंगाल में मुस्लिम लीगी सोहरावर्दी शासन चल रहा था । उनकी सरकार ने 'प्रत्यक्ष कार्यवाही' मनाने के लिए सार्वजनिक छुट्टी कर दी । कलकत्ता और सि हट में भारी छुरेबाजी और रक्तपात हुआ । मुसलमानों की महीनों से गुप्त और योजनाबद्ध तैयारी के कारण हिंदुओं का भारी कत्लेआम हुआ । पुलिस कुछ न कर सकी ।

कलकत्ते की सड़कों पर रक्त की नदियां बह गईं । हजारों कत्ल हुए और इससे भी अधिक संख्या में घायल हुए । सिलहट और ढाका में भी लोग हताहत हुए । नोआखाली और त्रिपुरा जिलों में मुसलमान बहुसंख्यक और हिंदू अल्पसंख्यक थे । नोआखाली में मुसलमान 18 लाख और हिंदू 4 लाख थे । वहां भयानक हत्याकांड में नारी निर्यातन, बलपूर्वक विवाह, धर्म-परिवर्तन, घरों को आग लगा देने, सामूहिक हमले और प्रसिद्ध परिवारों की बरबादी, वहां तीन वर्ष पूर्व घटित अकाल की सामूहिक मृत्युओं से भी अधिक भीषण और हाहाकारमय थी ।

पूर्वी बंगाल से प्रताड़ित हिंदू जब भागकर बिहार आए और वहां अपने ऊपर किए गए अत्याचारों की अप्रत्याशित और भीषण रोमांचकारी घटनाएं सुनाईं, तब बिहार की हिन्दू जनता प्रतिशोध के लिए अधीर हो उठी । जवाहरलाल और गांधी जी वहां परिस्थिति पर नियन्त्रण करने पहुंचे, परंतु जिन्ना ने मुसलमानों के इस कुकृत्य के लिए कहीं भी खेद प्रकट नहीं किया । मुस्लिम लीग की कार्यवाही का विषैला प्रभाव भारतभर में व्याप गया । गढ़मुक्तेश्वर, डासना, मेरठ, अहमदाबाद, पंजाब आदि में हिंदू-मुस्लिम एकता में दरार पड़ गई और वे खुल्लमखुल्ला परस्पर शत्रु बन गए । गढ़मुक्तेश्वर के कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर लाखों हिन्दू-परिवार गंगास्नान के लिए आए हुए थे । मुस्लिम लीग के लिए यह अच्छा अवसर था, गढ़ में तो वारदातें हुईं ही, परन्तु अमानवीय कत्ल डासना में हुआ । रोहतक, हरियाणा, पंजाब के हिन्दू-परिवार अपनी-अपनी बैलगाड़ियों में बैठे गंगास्नान कर अपने-अपने घरों को लौट रहे थे, रास्ते में गाजियाबाद से पहले मुसलमानों का एक छोटा-सा गांव डासना पड़ता है, वहीं बाहर के

भी मुस्लिम लीगी एकत्र हुए और रात्रि में जबकि बैलगाड़ियां निश्चित भाव से जा रही थीं, वे इन पर टूट पड़े और कत्ल, अपहरण, लूट ऐसी प्रबलता से किया कि इन साहसी हिन्दुओं को कुछ न सूझ पड़ा और वे अपने परिजनों को गंवाकर दुःखी हृदय से अपने-अपने गांवों को लौट आये। वहां पहुंचकर उनकी सामूहिक-प्रतिक्रियाएं स्वाभाविक रूप से बढ़ीं। जिन्ना ही भारत के विनाश-तत्त्व बने।

मुसलमानों की हत्याकारी प्रवृत्ति का स्थायी उग्र रूप लीग की 'प्रत्यक्ष कार्यवाही' के चार मास बाद मेरठ कांग्रेस-अधिवेशन के विशाल पंडाल में आग लगाने पर फिर प्रकट हुआ। यह मेरठ अधिवेशन उसी भांति ऐतिहासिक था, जिस प्रकार 1857 में गदर का सूत्रपात। इस अधिवेशन में आचार्य कृपालानी नये कांग्रेस-अध्यक्ष चुने गए। पुराने विधान के अन्तर्गत मेरठ का यह अधिवेशन अन्तिम था। 1857 के विद्रोह की चिनगारी मेरठ में भड़की थी और अब 1946 के अन्तिम दिनों में जब 1947 का प्रभात उदय हो रहा था, भारत के स्वतन्त्र एवं पूर्ण सत्तासम्पन्न प्रजातंत्र की घोषणा कांग्रेस ने की। 1857 की क्रांति के बाद भारत में अंग्रेज गवंनर जनरल वाइसराय बने थे, परन्तु ठीक 90 वर्ष व्यतीत होने पर इस अधिवेशन के बाद 1947 में अंग्रेज वाइसराय का नाम मिटा दिया गया। 1947 की फरवरी का अन्त होते-होते पूर्वी बंगाल से बीस लाख हिन्दू निकल चुके थे। वहां अल्पसंख्यकों का आर्थिक दृष्टि से गला घोंटा जा रहा था। एक ओर गिरफ्तारियां और तलाशियां जारी थीं तो दूसरी ओर नये कर लगाये जा रहे थे तथा जबर्दस्ती जिन्ना-कोष में कर्जा लिया जा रहा था। ऐसी हालत में अल्पसंख्यकों के लिए इसके सिवा कोई दूसरा चारा था ही नहीं कि वे या तो चुपचाप यह उत्पीड़न सहन करें या भारतीय संघ में भाग आये। जिनके पास भागने के साधन थे—ऐसे बीस लाख व्यक्ति पूर्वी बंगाल से निकल आये, परन्तु जिनके पास साधनों का अभाव था, वे अरक्षित और असहाय पड़े रह गए।

जिन्ना- कोष में जजिया-कर की भांति अत्याचारपूर्ण तरीकों से हिंदुओं से धन प्राप्त किया जाता था। पश्चिमी पंजाब से लाये गये नेशनल गार्ड के लोग और पुलिस के सिपाही शहरों और गांवों में हिंदुओं में आतंक फैलाते हुए घूमा करते। लीग गार्ड्स् ही आज्ञाएं निकालते और कानून चलाते

हिंदुओं के बन्दूकों के लाइसेंस रद्द किए जाते और मुसलमानों को खुले दिल से हथियार दिये जाते। वे हिन्दुओं पर खुलकर अत्याचार करते यह रक्तपात भयानक नरमेघ की भूमिका थी। अन्ततः भारत की राजनीति ने मोड़ लिया और ब्रिटिश प्रधान मंत्री एटली ने अपने एक भाषण में प्रकट कर दिया कि सम्राट की सरकार स्पष्ट रूप से अपने इस निश्चय को सूचित कर देना चाहती है कि वह जून 1948 तक जिम्मेदार भारतीयों के हाथों में सत्ता सौंप देने के कार्य को सम्पन्न कर देगी। इसलिए यह आवश्यक है कि सब भारतीय दल आपसी मतभेदों को भुलाकर भावी उत्तरदायित्व को संभालने के लिए तैयार हो जायें। राजनीतिकदृष्टि से भारत नवीन तथा अन्तिम स्थिति में पहुंचने वाला है, अतः यह सोचा गया है कि युद्धकाल में नियुक्त वाइसराय लार्ड वेवल की सेवाएं अब समाप्त करके एडमिरल वाइकाउन्ट माउन्टबेटन को भारत का नया वाइसराय बना दिया जाय। नये वाइसराय भारत की समृद्धि तथा सम्पन्नता को दृष्टि में रखते हुए भारत सरकार का दायित्व भारतीयों के हाथों में सौंपने की तैयारी करेंगे।

माउन्टबेटन ने दिल्ली पहुंचते ही सबसे पहला कार्य यह किया कि उन्होंने महात्मा गांधी को पत्र लिखकर भेंट करने के लिए बुलाया। गांधीजी उन दिनों विहार में साम्प्रदायिक दंगों को शांत करने के सहायता-कार्य में लगे हुए थे। लार्ड एटली की इस घोषणा को भी भारतीय जनता अविश्वास और संदेह से न देखे, इसलिए माउन्टबेटन ने आते ही अपने विभाग को ब्रिटिश शासन समेटने का प्रारम्भिक कार्य करने के आदेश दे दिये। भारत-भर में अंग्रेजों की गणना की जाने लगी। सिविल, मैडिकल तथा पुलिस विभागों को समेटा जाने लगा। रियासतों के एजेन्ट जनरल तथा पोलिटिकल डिपार्टमेंट को भी समेटने की तैयारी की गई। अंग्रेजी फौज को समाप्त कर भारतीय फौज बनाई जाने लगी।

एक निश्चित कूटनीतिक घातक गुप्त योजना के आधार पर अंग्रेजी सरकार ने विभाजन से पहले ही एक सर्कुलर निकालकर हिन्दू-मुसलमान गवर्नमेंट सर्वेन्टस से पूछ लिया था कि कौन हिन्दुस्तान में रहना चाहता है और कौन पाकिस्तान में। योजना के कूटनीतिक पहलू को न समझकर प्रायः नब्बे प्रतिशत हिन्दू हाकिमों, कर्मचारियों और अफसरों ने संभवतः भारत जाने की, तथा पचास प्रतिशत मुसलमानों ने पाकिस्तान जाने की

इच्छा प्रकट की थी और इस कार्य को भारत स्थित ब्रिटिश सरकार ने इतना महत्त्व दिया था कि आवेदन भेजने वाले प्रत्येक कर्मचारी और अफसरों को उनकी इच्छानुसार आनन-फानन भारत और पाकिस्तान भेज दिया गया। विभाजन के समय इस कूटचाल के परिणाम-स्वरूप पाकिस्तान में पांच प्रतिशत भी हिन्दू अफ़सर और कर्मचारी नहीं रह गए थे। प्रत्येक विभाग में सर्वत्र पाकिस्तानी तथा भारत से आये हुए मुस्लिम कर्मचारी भर गए थे। इस प्रकार न्याय, शासन-प्रबन्ध आदि के सब महकमों पर उन मुस्लिम अधिकारियों का एकदम आधिपत्य हो चुका था, जो लीग की विषाक्त साम्प्रदायिक भावना से भरे हुए थे।

पश्चिमी पंजाब और सिंध प्रदेश में यद्यपि दस प्रतिशत भी हिंदू न थे, परन्तु वे नब्बे प्रतिशत मुस्लिमों पर शासन करते थे। सामाजिक और आर्थिक सम्पूर्ण सत्ता हिन्दुओं के हाथ में थी। नगर, गांव और कस्बों में मुस्लिम जन निरीह, अशिक्षित और हिन्दुओं द्वारा परिचालित उद्योग, कृषि तथा व्यापार के उपाश्रित मात्र थे। न तो उनमें शौर्य स्थैर्य और तेज था, न ही चरित्र विभाजन से प्रथम ही कुछ प्रमुख लीगी जनों ने यह योजना स्थिर कर ली थी कि विभाजन होते ही हिंदुओं के घरबार; जमीन-जायदाद छीनकर मार डाला जाय अथवा मार भगाया जाय। इस कार्य के लिए शास्त्रास्त्र, धन और संगठन की सारी व्यवस्थित योजना बन चुकी थी। रात-दिन साथ-साथ रहने वाले हिंदू जन इस सबसे अज्ञात थे। वास्तव में धन, अधिकार और विलास ने उन्हें अन्धा कर रखा था। वे नहीं जानते थे कि अल्पसंख्यकों को आत्मरक्षा के लिए किस प्रकार संगठित और सतर्क रहना चाहिए। न वे उतने दूरदर्शी ही थे कि भावी विपदा को देख सकते। यद्यपि इसके बहुत-से लक्षण व्यक्त हो चुके थे।

ब्रिटिश प्रधान मंत्री एटली ने यद्यपि जून 1948 तक भारतीयों के हाथ में सत्ता सौंप देने की घोषणा की थी, परन्तु गवर्नर जनरल लार्ड माउण्टबेटन ने इस कार्य को उक्त अवधि से प्रथम ही सम्भव बना दिया।

15 अगस्त, 1947 भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति का दिन नियत हुआ परन्तु ज्योतिषियों ने कहा कि यह दिन अशुभ है। 14 अगस्त शुभ है। 14 अगस्त को यह कार्य होना चाहिए।

माउण्टबेटन ने नेहरू से परामर्श किया। नेहरू ने कहा कि स्वतन्त्र

भारत की कान्स्टीट्यूट असेम्बली का अधिवेशन 14 अगस्त की रात्रि से आरम्भ होकर 15 अगस्त की रात्रि के संयुक्त होने तक किया जाय। इस अर्द्ध निशा में नेहरू ने उस अधिवेशन में कहा—"बहुत वर्ष पहले हमने एक प्रतिज्ञा की थी, जिसके पूर्ण होने का समय आज आया है। नये दिन की नयी घड़ी शुरू होते ही जबकि दुनिया सोती होगी, भारत अपने जीवन और अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करके जाग उठेगा।"

नई दिल्ली पहुंचने के तीसरे दिन माउण्टबेटन ने जवाहरलाल नेहरू को अपने आवास पर बुलाकर कहा—"पंडित नेहरू, मैं चाहता हूं कि आप मुझे ब्रिटिश राज्य को समेटने के लिए आया हुआ अन्तिम वाइसराय न मानें, बल्कि नये भारत के निर्माण के मार्ग पर बढ़ने वाला प्रथम व्यक्ति मानें।" यह सौहार्द पूर्ण बात सुनकर नेहरू हंस दिए। उन्होंने कहा—"आपका माधुर्य बड़ा खतरनाक है।"

इसके बाद तो नेहरू और माउण्टबेटन-परिवार में घनिष्ठता बढ़ती ही गई। माउण्टबेटन ने जिन्ना को भी भेंट करने के लिए अपने आवास पर निमंत्रित किया। जिन्ना पूरी शान-शौकत से आये। आकर हाथ मिलाते हुए उन्होंने कहा—"मैं केवल एक ही शर्त पर आपसे विचार कर सकता हूं कि..."

माउण्टबेटन ने बीच में ही बाधा देकर कहा—"मि० जिन्ना, मैं आपसे राजनीति आदि किसी भी प्रसंग पर तब तक बात करने को तैयार नहीं, जब तक हम लोग परस्पर भली-भाँति परिचित नहीं हो जाते। पहले अपने हाल-चाल सुनाइए!"

माउण्टबेटन के इस व्यवहार से जिन्ना कुछ हतप्रभ हुए, परन्तु उन्होंने मैत्री की भाषा का प्रयोग नहीं किया। दो घंटे की बातचीत में वेरुखी, दम्भ और शुष्कता बनी रही। उनके चले जाने पर माउण्टबेटन में उस दिन अन्य किसी नेता से भेंट करने की शक्ति नहीं रही। वे काफी थक चुके थे।

अगले दिन जवाहरलाल नेहरू जब माउण्टबेटन से मिलने पहुंचे तब उन्होंने पहला प्रश्न यह किया—"जिन्ना के बारे में आपकी क्या राय है? माई गाड, ही वाज कोल्ड!"

नेहरू कुछ गम्भीर हुए। उन्होंने कहा—"जिन्ना भारत का दुर्भाग्य है। उन्हें अपने जीवन में न पारिवारिक सफलता मिली, न राजनीतिक

सफलता ! राजनीतिक सफलता उन्हें साठ बरस की उम्र के बाद दुराग्रह पर चलकर प्राप्त हुई है। इससे पहले भारत की राजनीति में उनकी अह-मियत नहीं थी। वे कामयाब वकील जरूर थे, किन्तु बहुत ऊंचे दर्जे के अच्छे वकील नहीं। उनकी बाद की सफलता का रहस्य 'मुकम्मिल तौर से एक निषेधात्मक रवैये को लेकर अड़े रहने की उनकी काबलियत थी।"

माउण्टबेटन ने कहा—"उसमें न नम्रता है, न सौम्यता।"

"तब क्या आप का मिशन असफल होगा ?"

"नहीं, हर्गिज नहीं ! मेरा कार्य पूरा होगा।"

"शायद जादू से ?"

"नहीं, सत्प्रण से जो मैंने किया है।"

"तब आप अवश्य सफल होंगे।" कहकर नेहरू ने माउण्टबेटन से हाथ मिलाया। अन्त में वह अंग भंग की घड़ी आ पहुंचे और भारत की पूर्वी और पश्चिमी दोनों भुजाओं को काटकर और उत्तुंग शिखर के शीर्ष स्थान को भी थोड़ा तराशकर खून टपकते इन भंग अंगों में मुस्लिम बहुसंख्यकों का हरा कफन लपेटकर पुण्यभूमि भारत का विभाजन कर दिया गया। एक-दूसरे से हजारों मील दूर दो भूखण्डों का एक नया देश बना दिया गया—पाकिस्तान। जिन्ना के अज्ञान का पाकिस्तान।

अंग्रेजी सरकार ने देश में घोषणा कर दी कि 15 अगस्त, 1947 को भारत को दो भागों में बांटकर स्वतंत्र कर दिया जाएगा। यह घोषणा होते ही देश में हाहाकार मच गया। मुस्लिम लीग की सीधी कार्यवाही की विभीषिका का और भी उग्र रूप अब देश के सामने था। पश्चिमी पंजाब के हिन्दुओं को अपना सामान बटोरने का अवसर नहीं दिया गया। 15 अगस्त का प्रभात होते ही मुस्लिम होमगार्डों और मुस्लिम जनता ने उनकी चल-अचल सभी संपत्ति पर जबरन कब्जा करके उन्हें असहाय अवस्था में निकाल दिया। हिन्दुस्तान से पाकिस्तान और पाकिस्तान से हिन्दुस्तान पहुंचने की भाग-दौड़ मच गई। लाखों की संख्या में लोग कत्ल किये गए और अमानवीय कुकर्म किए गए। दिल्ली में 15 अगस्त को संध्या छः बजे इंडिया गेट पर लार्ड माउन्टबेटन ने यूनियन जैक उतारा और तिरंगा राष्ट्रीय झण्डा लहराया। अंग्रेजी राज्य समाप्त हुआ और भारत स्वतंत्र हुआ। कांग्रेस ने लार्ड माउन्टबेटन को स्वतंत्र भारत का प्रथम गवर्नर

जनरल बनाए रखने में राजनैतिक लाभ समझा और वे कांग्रेस सरकार के अधीन गवर्नर जनरल बने रहे। कमांडर-इन-चीफ भी अभी यथापूर्व रहे परन्तु जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल उनके सिर पर थे।

## 21. रजौल

सत्ताइसवीं अगस्त को आधी रात बीत जाने पर भी अमृतसर नगर नहीं सो रहा था। बहुत-से मोहल्ले धांय-धांय जल रहे थे। अधजले दुमंजिले, तिमंजिले मकान ढह-ढहकर गिर रहे थे। उन मकानों में रहनेवालों के प्राण बचाने तथा आग बुझाने का कोई बन्दोबस्त ही न था। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था। बहुत-से स्त्री-पुरुप गिरते हुए मलवे के नीचे दबे हाय-हाय कर रहे थे। बहुत-से बचे-खुचे स्त्री-पुरुष अपने बच्चों को गोद में लिये घिसटते हुए अर्द्धविक्षिप्त की भांति गलियों के अंधेरे में अपने को छिपाते हुए नगर से बाहर जाने की चेष्टा कर रहे थे। प्रत्येक क्षण उन्हें मौत से भेंट करने की सम्भावना थी। झुण्ड के झुण्ड क्रुद्ध ज़न, बन्दूक, भाला, बर्छी, तलवार, गंडासा, खुरपी, लट्ठ, लोहे की छड़, चीमटा—जो जिसके हाथ लगा वही शस्त्र लिये दस-बीस-तीस-पचास-सौ का जत्था बांधे विपक्षियों की टोह लेते घूम रहे थे। दया, अनय-विनय का वहां कोई प्रश्न ही न था। यह केवल विद्वेष और क्रोध ही न था, इसमें बदले और प्रतिहिंसा की दुर्दम्य भावना भी थी। मरे हुए जनों की लाशें गली-कूचों, नालियों में जहां-तहां पड़ी थीं। बहुत-सी उनमें सड़ गई थीं और फूल गई थीं। उनमें से असह्य दुर्गन्ध उठ रही थी। उनमें कुछ मुमूर्षु ऐसे भी थे, जिनके कठोर प्राणों को अभी और अधिक यन्त्रणाएं सहन करनी थीं। वे सिसक रहे थे। परन्तु वे अभागे इस भय से कराह भी न सकते थे कि क्रुद्ध आततायी उन्हें जीवित समझ दो टूक न कर दें। प्राणों का मोह ऐसा ही होता है। चारों ओर शोर मचा था। दूर से भांति-भांति की डरावनी आवाजें आ रही थीं। मकानों के गिरने के धड़ाके और बन्दूकों की धमक चारों ओर से सुनाई पड़ रही थी।

इसी समय एक बड़ी-सी मोटरगाड़ी अंधेरी गलियों को पार करती हुई एक विशाल अट्टालिका के सामने आ खड़ी हुई। अट्टालिका प्रायः ध्वस्त

हो चुकी थी। मालूम होता है, एक-दो दिन पहले ही उसमें आग लगा दी गई थी। ऊपर की सब मंजिलें ढह गईं थीं, छतें सब गिर चुकी थीं, केवल झुलसी हुई दीवारें खड़ी थीं। मलबे के ढेर से धुआं निकल रहा था। कोई-कोई धरन अब भी अंगारे की भांति चमक रही थी।

मोटर खड़ी करके ड्राइवर ने हार्न बजाया। हार्न सुनकर खण्डहर के पीछे से एक सिर धीरे-धीरे बाहर निकला। फिर वह पुरुष चौकन्ना हो चारों ओर देखने के बाद मोटर के निकट आया। इस पुरुष की आयु साठ से अधिक होगी। भरी हुई खिचड़ी दाढ़ी, बड़ी-बड़ी आंखें, मांसल शरीर, ऊंचा कद। किन्तु फटे और गन्दे वस्त्र, जो राख और धूल में काले हो रहे थे। सिर और दाढ़ी के बालों में धूल भरी थी। पैर में जूता न था। एक हाथ पट्टी में लटक रहा था। आगन्तुक को देखकर ड्राइवर ने उतावली में कहा—"हाजी साहब, जल्दी कीजिए। वरना हम फंस जायेंगे। क्रुद्ध जनों का एक गिरोह इधर ही आ रहा है।"

"लेकिन भाईजान, कोई खतरा तो नहीं है?"

"आप अजब वहस में वक्त बर्बाद कर रहे हैं। खतरे के मुंह में तो आप बैठे ही हैं। झटपट इससे बाहर निकलिए, वरना मैं चला।"

हाजी साहब ने ड्राइवर की चिरौरी करके कहा—"नहीं-नहीं मेहरबान, आपने मेरी इज्जत और जान बचाने का वादा किया है। बखुदा ऐसा न कहें।"

"तो आप फौरन गाड़ी में बैठिए, वरना आपके साथ मुझे भी मरना होगा।"

"बस, आधा मिनट।"

इतना कहकर हाजी साहब खण्डहर में लपक गए। और थोड़ी ही देर में उनके पीछे तीन स्त्रियां बुर्के में लिपटी चली आ रही थीं। वे सब जल्दी-जल्दी मोटर में घुसीं। चौदस के चन्द्रमा की स्निग्ध ज्योत्स्ना इस वीभत्स और मनहूस वातावरण पर आलोक फेंककर अट्टहास-सा कर रही थी। मोटर में पिछली सीट पर एक स्त्री सिकुड़ी हुई गट्ठर-सी बनी बैठी थी। उस पर अभी किसी की दृष्टि नहीं पड़ी थी। हाजी साहब के साथ जो तीन स्त्रियां थीं, उनमें दो उनकी युवती पुत्रियां और एक उनकी पत्नी थी। पहले लड़कियां ही उतावली से मोटर में घुसीं। घुसते ही वे उस स्त्री पर

जा पड़ीं। भीतर एक स्त्री है, यह देखते ही वे भय से चीख पड़ीं। भय तो उस स्थान के प्रत्येक परमाणु में छाया ही था। उनका चीखना सुनते ही हाजी साहब ने रिवाल्वर उस स्त्री की छाती पर तान दिया और गरजकर कहा—"तू कौन है?"

ड्राइवर ने हाजीजी का हाथ पकड़कर कहा—"हैं, हैं, यह क्या करते हैं? पहचानते नहीं बी हमीदन हैं, ये भी लाहौर जाएंगी।"

बी हमीदन अमृतसर की प्रसिद्ध वेश्या थी। हाजी साहब उसे अच्छी तरह जानते थे। उसका प्रसाद भी पा चुके थे। संगीत और रूप दोनों ही से उसने अमृतसर के धनी-मानी जनों में ख्याति अर्जित की थी। उसकी एक आलीशान अट्टालिका अपनी थी। हमीदन बुर्का नहीं पहने थी। उसका रुपहला रूप उस चांदनी में इस वीभत्स और भय के वातावरण में भी बहुत मोहक लग रहा था। हाजी साहब ने हमीदन को अच्छी तरह पहचानकर ड्राइवर से कहा—"मगर, इसके क्या माने? मैंने पूरी मोटर का किराया पांच हजार रुपया तुम्हें लाहौर पहुंचाने का दिया है। अब तुम यह सवारी इसमें नहीं ले जा सकते।"

ड्राइवर ने नाराजी के स्वर में कहा—"जनाब, अमृतसर से लाहौर जाने का चार सवारियों का मोटर भाड़ा पांच हजार रुपया नहीं होता, सिर्फ पन्द्रह रुपया होता है। यह पांच हजार रुपया आपके खानदान की इज्जत और जान बचाने तथा अपनी जान जोखिम में डालने का मूल्य है। नाहक चकल्लस में आप वक्त बर्बाद मत कीजिए। झटपट गाड़ी में बैठ जाइए।"

"मगर मेरी लड़कियां और बीवी क्या एक बाजारू रज़ील औरत के बराबर बैठेंगी? तुम जानते हो हाजी करीमउद्दीन अमृतसर में ही नहीं, तमाम पंजाब में भारी इज्जत रखता है। तुम्हें यह भी मालूम है कि मेरी बड़ी लड़की ननकू नवाब की बेगम है। वे जब सुनेंगे कि उनकी बेगम एक बाजारू औरत के साथ गाड़ी में बैठकर आई है तो वे उसका मुंह भी न देखेंगे।"

"तो हाजी साहब यह आपकी मर्जी है। आप मत जाइए, मगर बी हमीदन जरूर जाएंगी। एक तो इन्होंने मुझे अपने अकेले को लाहौर पहुंचाने का दो हजार रुपया दिया है, दूसरे यह मेरी दोस्त हैं।"

"तो इसका साफ मतलब यह है कि तुम मुझे धोखा दे रहे हो ?"

"धोखा देना होता तो हाजी साहब, मेरी बगल में यह किरपाण है। अभी तुम चारों को काट फेंकूंगा। अपने रिवाल्वर के जोश में मत रहना।"

"मगर मैंने तुम्हें पांच हजार रुपया दिया है।"

"तो मैं भी जान पर खेलकर तुम्हें लाहौर पहुंचा आने पर आमादा हूं।"

"लेकिन मेरी लड़कियां और बेगम अस्मतवाली और पर्दानशीन शरीफ औरतें हैं। वे एक रज़ील, बाजारू औरत के पास नहीं बैठ सकतीं।

"तब फिर मत जाइए, मैं जाता हूं।" ड्राइवर ने गाड़ी स्टार्ट करने को हाथ बढ़ाया।

हाजी साहब ने आगे बढ़कर कहा—"नहीं-नहीं भाई, ऐसा मत करो। हमें मौत के मुंह में मत ढकेलो। यह लो पांच हजार रुपया और ले लो। इस बाजारू औरत को उतार दो यहीं।" ड्राइवर ने हंसकर कहा—"पचास हजार लेकर भी नहीं। आप रुपया मत दिखाइए। रुपया ही लेना होता तो तुम चारों को मारकर उस बक्स में जो-कुछ तुम्हारे पास है सब ले लेता। याद रखो हाजी सहाब, हर एक का धर्म है। मैंने तुमसे पांच हजार रुपया इसलिए लिया है कि तुम्हें और तुम्हारे कबीले को सही-सलामत लाहौर पहुंचा दूं। मैं इस कौल पर आमादा हूं—अब आप नाहक हुज्जत कर रहे हैं। शोर बढ़ रहा है। मालुम होता है भीड़ इधर ही आ रही है। बैठना हो बैठिए, वरना मैं चला। बस, मैं अपना कौल पूरा कर चुका।"

हाजी साहब की आंखों से आंसुओं की चौधार वर्षा होने लगी। उन्होंने पत्नी से कहा—"बैठो बेगम, बैठ जाओ। लाचारी है। बेटियों बैठ जाओ।" बेगम ननकू नवाब ने सांप की तरह फुफकार मारकर कहा—"अब्बा जान, आप मुझे एक रज़ील बाजारू औरत के बराबर बैठने को मजबूर कर रहे हैं। अपना पिस्तौल निकालकर मेरे सीने में गोली मार दीजिए। मैं अपनी इज्जत को यों बर्बाद न करूंगी, जान दे दूंगी।"

हाजी साहब ने फिर एक बार ड्राइवर की ओर देखा। धीरे से कान में कहा—"मान जाओ मिहरबान। दस हजार ले लो, मेरे खानदान की इज्जत बचा लो। ताउम्र तुम्हारा एहसान मानूंगा।"

ड्राइवर ने गुस्से से लाल-लाल आंखें करके हाजी की ओर देखा और

उन्हें एक ओर धकेलकर मोटर स्टार्ट कर दी।

हाजीजी ने दोनों हाथ ऊंचे करके कहा—"अच्छा, अच्छा, तुम्हारी ही बात रहे भाई। बैठो बेगम, बैठो बेगम, बैठो।"

उन्होंने धकेल-धकेलकर सबको गाड़ी में ठूंस दिया। भीड़ नज़दीक आ चुकी थी। पर इसी बीच मोटर हवा हो गई।

सावन की रात। चौदस का चांद काले-सफेद बादलों में अठखेलियां कर रहा था पंजाब पर कैसी बीत रही है, यह उसे ज्ञात न था। उसी चांद की चांदनी में कार लाहौर की सड़क पर दौड़ रही थी। बस्ती का कोलाहल दूर होता जा रहा था। यात्रियों के हृदय, जो भय के बोझ से दबे हुए थे यत्किंचित हलके हो रहे थे। सब चुप थे। उनकी सांस की आवाज मोटर की घुर्र-घुर्र में घुल-मिल रही थी। अभी यात्रियों को भय ही भय था। कुल सोलह मील का सफर था, जो आसानी से एक घंटे से पूरा हो सकता था। परन्तु इन अभागे यात्रियों का एक-एक पल युग के समान जा रहा था। वे जैसे फांसी के फंदे में झूल रहे थे। एक ही क्षण बाद क्या होने वाला है, इसका उन्हें पता न था। परन्तु जिस बात की आशंका थी वही हुआ। छः मील चलने पर सड़क के किनारे एक गांव आया। इस गांव के बाहर से कुछ हथियारबन्द आक्रान्ता सड़क को घेरकर खड़े हुए थे। कार के पहुंचते ही उनमें से एक नौजवान ने हाथ की तलवार हवा में ऊंची करके कहा—"मोटर रोक दो।" साथ ही उनकी तलवारें और बर्छे म्यान से बाहर निकल आए। हाजी साहब और उनकी बेगम का खून सफेद हो गया। वे जल्दी-जल्दी कलमा पढ़ने लगे।

मोटर को रोककर ड्राइवर नीचे उतर पड़ा। टार्च के प्रकाश में उसे भलीभांति देखकर आक्रान्ताओं ने कहा—"कहो, गाड़ी में कौन है?"

"मुसलमान सवारियां हैं।"

"सब मर्द ही हैं या औरतें भी हैं?"

"एक मर्द और चार औरतें हैं।"

"कहां जा रहे हो?"

"लाहौर।"

"हम इन्हें मार डालेंगे, सबको नीचे उतारो।"

"मैंने कसम खाकर इन्हें लाहौर पहुंचाने का प्रतिज्ञा की थी।"

"क्या वे तुम्हारे दोस्त हैं ?"

"नहीं।"

"कुछ रकम दी है ?"

"दी है।"

"कितनी ?"

"पांच हजार एक और दो हजार एक।"

"कुल सात हजार ?"

"कुल सात हजार।" इसके बाद उनमें से कुछ व्यक्ति सलाह करने को एक ओर चले गए। कुछ देर बाद एक ने आकर कहा—"तुमने उन्हें लाहौर जीता-जागता पहुंचाने की ही कसम खाई है न ?"

"बस इतनी ही।"

"अच्छा, औरतों में कोई जवान औरत भी है ?"

"तीन जवान और एक बूढ़ी है।"

"तब जवान औरतों में से एक आज रात यहां हमारे पास रहे। बाकी लोग जाएं। वह औरत यदि हमें नाराज न करेगी, तो सुबह लाहौर पहुंच जाएगी।"

"सवारियां अमृतसर के मशहूर रईस हाजी नवाब करीमुद्दीन के घर की हैं। पर्दानशीन इज्जतदार औरतें हैं।"

"यह उनके सोचने का काम है कि वे सब जान देंगे या उनकी एक औरत अपनी अस्मत देगी।"

"पर कैसे कहूं ?"

"तो हम कह सकते हैं। पर तुम्हारा कहना सुहूलियत से होगा।"

"अच्छा, मैं कहता हूं।"

"सिर्फ दस मिनट का समय दिया जाता है, इसके बाद सबके सिर काट लिये जायंगे।" ड्राइवर से सब बातें सुनकर हाजी साहब पागल की तरह बाल नोचने लगे। बेगम साहबा बेहोश हो गईं और दोनों लड़कियां थर-थर कांपने लगीं। वे इस बात का निर्णय न कर सके कि क्या करें ? सब अपनी जान दें या एक लड़की की आबरू लुटायें। फिर वे किस मुंह से अपनी बेटी से ऐसी गन्दी बात कह सकते थे। उन्होंने रोते-रोते कहा—"अफसोस, उन जालिमों से कहो वे आकर हमें कत्ल कर दें। पर मैं जीते जी अपनी बेटियों

की इज्जत पर हर्फ नहीं आने दूंगा।"

ड्राइवर ने कहा—"यह मत समझिए कि मैंने कहने-सुनने में कसर रखी होगी। इस वक्त उन लोगों की आंखों में खून उतर रहा है, वे आपको मारकर भी लड़कियों की आबरू लूट सकते हैं। सब बातों पर विचार कर लीजिए। सिर्फ दस मिनट का वक्त है।"

हाजी साहब ने पिस्तौल निकालकर कहा—"बेहतर है मैं अपने ही हाथों से लड़कियों को कत्ल कर दूं और अपनी जान भी दे दूं।" परन्तु वास्तव में उनमें जान लेने-देने का दम ही न था।

इसी बातचीत में दस मिनट का समय बीत गया। इसकी सूचना देने को आक्रमणकारियों ने हवा में फायर किया। गोली दगने की आवाज सुनते ही हाजी साहब के हाथ से पिस्तौल छूट पड़ी। वह जमीन पर लोट गये और सिसकते हुए कहने लगे----"हाय मैं किस मुंह से कहूं कि बेटियों, अपनी अस्मत खोकर खानदान की जान बचा लो!"

बी हमीदन जब से मोटर में आकर बैठी थीं, पत्थर की तरह चुप बैठी थी। उसने हाजी साहब की हिकारत-भरी बातें अपने विषय में चुप-चाप सुन ली थीं। वह जानती थी कि जब जान के लाले आ पड़े हों तो ऐसी छोटी-मोटी बातों पर विचार नहीं किया जाता। अब वह इस आकस्मिक विपत्ति में हाजी साहब को विलखते हुए चुपचाप देख रही थी। अपनी बौखलाहट में उसे सब लोग भूल हो गए थे।

उसने कनखियों से देखा—खूंखार आक्रमणकारियों का दल तलवार चमकाता हुआ मोटर की ओर आ रहा है। वह चुपके से मोटर से उतरी, दस कदम आगे बढ़कर उस आक्रान्ताओं से कहा—आप लोग आगे मत बढ़िए। मैं एक मिनट में आपके पास आती हूं।"

उस चितकबरी चांदनी रात में शराब और खून में उन्मत्त आक्रमण-कारियों ने उस रूपसी बाला के मृदुल कण्ठ स्वर से आश्वासन पाकर पाश-विक अट्टाहास किया। सब लोग जहां के तहां ठिठक गए। हमीदन फिर मोटर के निकट आई और हाजी साहब को सम्बोधित करके बोली—"आपसे मेरी एक आरजू है, मेरी सारी रकम इस गठरी में है। आप एक शरीफ़ बुजुर्ग मुसलमान हैं। आपकी और आपके खानदान की इज्जत बचाना मेरा फ़र्ज है। मैं एक रजील बाजारू औरत जरूर हूं, मगर इन्सानी फ़र्ज से

बेखबर नहीं। यह गठरी खुदा के सामने मैं आपको अमानत सौंपती हूं। अगर जिन्दा लाहौर पहुंच गई तो ले लूंगी। खुदाहाफ़िज़!"

हाजी और बेगम दोनों ही बी हमीदन का यह त्याग और साहस देखकर सकते की हालत में रह गए। हाजीजी उसके कदमों में गिरकर कहने लगे—"बेटी, तूने हमारी इज्ज़त और जान बचा ली।"

बेगम रोती-रोती उससे लिपट गई और बलैयां लेने लगी।

हमीदन ने उनकी किसी बात पर कान नहीं दिया। वह ड्राइवर की ओर मुखातिब हुई और बोली—"भाई, तुम एक दयानतदार मर्द हो। देखो, तुमने मेरा किराया खाया है और तुम देख रहे हो कि मैं एक फ़र्ज़ पूरा करने पर आमादा हूं। अब तुम्हारा यह फ़र्ज़ है कि सुबह यहां आकर देखो कि मैं जिन्दा हूं या नहीं। और यदि मैं जिन्दा हूं तो मुझे लाहौर पहुंचा देना।" ड्राइवर ने कहा—"चाहे मेरी जान चली जाए पर मैं तुम्हें कौल देता हूं कि मैं सुबह जरूर आऊंगा।"

बी हमीदन धीरे-धीरे खून के प्यासे उन्मत्त आक्रान्ताओं के पास चली गई और मोटर तेजी से लाहौर की ओर रवाना हुई।

## 22. असहाय नारी

अमृतसर से लाहौर तक की आधे घण्टे की यात्रा महाकाल की अति विषम गति के कारण सौ वर्षों के समान काटकर उस रज़ील नारी की कृपा से जब हाजी करीमउद्दीन अपने परिवार के साथ सही-सलामत लाहौर पहुंच गए, तब उन्होंने खुदा का शुक्र माना और अपने दामाद के घर जाकर डेरा किया। यद्यपि नरसंहार अगस्त में हुए, परन्तु जनवरी, फरवरी में ही लाहौर की मुसलमानी आबादी में विस्फोटोन्मुख ज्वालामुखी प्रकट हो गया था। सैदमिट्ठा बाजार में रणजीत सिंह की समाधि टूट-फूटकर उस पर ढेरों मलवा और घास-फूंस जमा था, परन्तु बादशाही मस्जिद के गुम्बजों पर फिर से संगमरमर मढ़ा जा रहा था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे एक घर में दुलहन के ब्याह की तैयारियां हो रही हैं, उस पर हल्दी चढ़ाई जा रही है और दूसरे घर में मुर्दा उठाने को पड़ा है।

लाहौर पहुंचने के एक सप्ताह बाद ही हाजी करीमउद्दीन भय, क्षोभ

और आतंक से पाक-साफ हो चुके थे। सब रंग बदल गया था। उनके दामाद ननकू नवा: की एक शानदार हवेली थी, उसी के सुसज्जित ड्राइंग कक्ष में हाजी साहब तनजेब का कुर्त्ता पहने मसनद पर पड़े पान कचर रहे थे। सिर पर बिजली का पंखा सर्राटे-बन्द चल रहा था। अम्बरी तम्बाकू पेचवान में सुलग रहा था, जिसकी महक से कमरा बाग़-बाग़ हो रहा था। ननकू नवाब भी श्वसुर की अर्दली में एक आरामकुर्सी पर पड़े सिगरेट के कश खींच रहे थे। दीन, ईमान और पाकिस्तान के छोटे-बड़े सब मसलों पर बहस हो रही थी। हाजी साहब के चेहरे और रंग-ढंग से यह पता ही नहीं लगता था कि उन पर कोई भारी विपत्ति टूट चुकी है।

खिदमतगार ने पेचवान पर नई तम्बाकू चढ़ाकर अर्ज की कि एक औरत आपसे मिलना चाहती है। हाजी साहब चमक पड़े। उन्होंने कहा—"औरत? कौन औरत? कह दो मुलाकात नहीं होगी।"

मुलाकात करने वाली औरत खिदमतगार के पीछे-पीछे वहां तक चली आई थी। उसने हाजी साहब की बात सुन ली थी। उसने कहा—"अफसोस है हाजी साहब, मुझे मुलाकात करना जरूरी हो गया। उस मुसीबत से बचकर आपको यहां खुशोखुर्रम देखकर खुशी हुई।"

"मगर बानू, तुम अपना मतलब तो कहो?"

हाजी साहब नहीं चाहते थे कि नवाब के सामने बात खुले कि वह एक बाजारू औरत है और उन्हें अपनी लड़कियों के साथ उसके पास बैठकर यात्रा करनी पड़ी है। बी हमीदन ने कहा—"हुजूर मैं यह जानती हूं कि आप जैसे रईसों के घर बिना बुलाए मेरे जैसी रजील बाजारू..."

"मगर खुदा के लिए अपना मतलब कहो, मतलब!"

हमीदन ने दो टूक कहा—"मतलब यह कि मेरी गठरी मुझे इनायत कीजिए।"

"गठरी कैसी गठरी?"

"जो मैंने आपको सौंपी थी?"

'क्या तुम कोई पागल औरत हो बेगम? कब? कैसी गठरी? भई, तुम जरूर किसी मुगालते में पड़ गई हो। किसी दूसरे आदमी को गठरी-वठरी दी होगी। मैं तो तुम्हें जानता भी नहीं। मेरा नाम हाजी..."

"आपका नाम मैं जानती हूं।" हमीदन ने जोश में आकर कहा—

"गठरी मैंने खुदा को गवाह करके दी थी। अब आप नहीं देते तो न सही। मगर वह मेरी हराम की कमाई थी। मुझे इस बात की खुशी है कि जब आप उसे हजम कर लेंगे तो आपके खून में हराम का नमक भर जाएगा। जाइए, जैसे भडुवे-मीरासी मुझसे पाते-खाते हैं। आप भी पा गए हैं तो खाइए। बन्दगी अर्ज।" नवाब साहेब का चेहरा सफेद हो गया। उन्होंने अपने दामाद की ओर देखा। ननकू नवाब बी हमीदन की रूपराशि को चुपचाप पी रहे थे। वे उठकर उसे रोकने को बढ़े परन्तु वह बेअस्मत नारी एक को हतप्रभ और दूसरे को आकर्षित करके तेजी से चल दी। नवाब ने खास खिदमतगार को हवेली के अन्दर से बुलाकर चुपके से उसका पीछा करने और पता लगाने की आज्ञा दी।

बी हमीदन उस रात में एकाकी असहाय उन नर-पशुओं के पाशविक आक्रमण से थकित शरीर लिये और अपनी गठरी की पूंजी भी गंवाकर नवाब की हवेली से बाहर निकलकर लाहौर मार्ग पर आ खड़ी हुई। उसके हाथ में एक भी पैसा नहीं था, उसकी पवित्रता और साधना का व्रत खण्डित हो चुका था। उसका एक मात्र परिजन भाई भी अमृतसर की भागदौड़ में उससे बिछुड़ चुका था। दुखित हृदय से वह खड़ी-खड़ी अपने भविष्य पर विचार करने लगी। अमृतसर में उसका जीवन भाई के साथ एक गायिका के रूप में बहुत सुख और शांति से व्यतीत हो रहा था। उसकी महफिल में अधिकांश संख्या शहर के सम्भ्रान्त हिन्दुओं की ही होती थी, इसीसे एक मुस्लिम नारी होते हुए भी उसका जीवन-हिंदू-संस्कृति में व्यतीत हो रहा था। नृत्य और गायन में उसकी तल्लीनता इतनी अधिक थी कि उसका यह सार्वजनिक जीवन अन्य कुत्साओं की ओर बढ़ा ही नहीं। बचपन से ही अपने भाई के साथ उसे असहायावस्था में एक वृद्धा गायिका की शरण में आना और रहना पड़ा। वातावरण के प्रभाव से वह नहीं बच सकी और अन्ततः उसे गायिका का जीवन यापन करना पड़ा। हमीद भी स्कूल की आठवीं पास करके घुमक्कड़ हो गया और अधिक नहीं पढ़ सका, परन्तु संस्कार उसके भी दूषित नहीं हुए। उसकी बहन रात्रि के प्रथम पहर तक जब अपनी स्वरलहरी से अपने श्रोताओं को उपकृत करती रहती थी, तब वह अपने कमरे को बन्द कर लाइब्रेरी से लाई विविध पुस्तकें पढ़ता रहता और बहन के आने पर उसके साथ भोजन करता। भाई-बहन के प्रेम

और एक-दूसरे का अधिकाधिक विकसित सुखी जीवन देखने की अभिलाषा दोनों के मन में पनपती रही।

कर्त्तव्यवश अपना धर्म समझकर जब उसने स्वयं को उन आक्रान्ताओं को समर्पण किया और पवित्रता खो दी तब उसका हृदय घृणा से भर गया और वह विरक्त भाव से भाई को ढूंढ़ने का उपाय सोचने लगी। उसका भी यही विचार था कि हमीद भी निश्चय ही लाहौर में होगा। पर यदि उसे अमृतसर से बच निकलने का अवसर न मिला होगा तो उस पर क्या बीती होगी—यह दुर्विचार आते ही वह निष्प्राण-सी होने लगती। यह कला-विद् नारी आज एक वेश्या बनकर लाहौर की खून-भरी सड़कों पर खड़ी अपनी सूनी दृष्टि से उन हजारों व्यक्तियों में अपने प्यारे भाई को ढूंढ़ रही थी। पूछते-पूछते वह मुस्लिम शरणार्थी शिविर में पहुंची। दूर-दूर तक तम्बुओं की कतारें थीं। अनगिनत लोग भय और दुःख से आक्रांन्त होकर वहां ठहरे हुए थे। स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सभी अपनी विपन्नावस्था में डूबे हुए अपने छोड़े हुए घरबार की दर्द-भरी घटनाएं रो-रोकर एक-दूसरे को सुना रहे थे। स्वयंसेवक दौड़-धूप करके खानपान की व्यवस्था करके उन्हें राहत और दिलासा दे रहे थे।

पनाह की तलाश में उसे घूमती समझ ननकू नवाब के खिदमतगार ने उसके सामने आकर पूछा—"डेरा चाहिए ?"

"नहीं भाई, अभी तो कल से मसजिद में रह रही हूं।"

"तब किसकी तलाश है ?"

"भाई की। अमृतसर से भागते समय मुझसे बिछुड़ गया।"

"क्या नाम है ?"

"हमीद।"

"हुलिया तो बताओ।"

हुलिया सुनकर कुछ सोचकर कहा—"अगर लाहौर की ओर आया होगा, तो मैं पता जरूर निकाल दूंगा। घबराओ नहीं। मैं कल तुम्हें खबर देने जरूर आऊंगा, पर तुमने डेरा कहां किया है ?"

"कल ही पहुंची हूं, रात स्टेशन के पास मस्जिद में सो गई थी।"

"या खुदा, रहम कर।" उसने दर्द-भरे दिल से कहा। फिर बोला, "कहो तो यहां इन कैम्पों में ठहरने का बन्दोबस्त कर दं। यहां खाना-कपड़ा

भी बंटता है।"

"मुझ बेसहारा को अब तो यही करना होगा। पर भाई, कल तक तुम मेरे भाई की खोज-खबर जरूर देना। बड़ा सवाब होगा। देखो, बिल्कुल नौजवान है, गोरा-चिट्टा। वह दूर से ही अपने लम्बे घुंघराले बालों से पहचाना जाता है। उसके कान के पीछे तिल के निशान को भी याद रखना, भूलना नहीं।"

"तुम मुझ पर भरोसा करो बी, चलो मैं तुम्हें मैनेजर के कैम्प में पहुंचा दूं—वहां तुम्हारा इन्तजाम हो जाएगा।"

भाई की स्मृति से आंखों में छलक आए आंसुओं को पोंछकर हमीदन उसके पीछे चल दी। हमीदन की वहां व्यवस्था कर खितमतगार ने लौटकर अपने मालिक से सब हाल कहा। सुनकर ननकू नवाब कुछ देर सोचते रहे फिर बोले— "युसुफ मियाँ, कल उससे कहना कि तुम्हारे भाई तुम्हें खोजने श्रीनगर चले गए हैं, उन्हें ऐसी ही टोह मिली थी। अगर तुम वहाँ जाना चाहो तो मैं वहाँ पहुंचा दूँ। मेरे मालिक कल वहाँ जा रहे हैं, उनकी कार में तुम्हें बैठा दूंगा।"

"तो क्या हुजूर इस खूनी माहौल में वहां जा सकेंगे?"

"मेरे सब इंतजाम हैं, तुम फिक्र न करो। तुम्हें उसके हमराह श्रीनगर चलना होगा। जाओ तैयारी करो।"

"जो हुक्म" कहकर खिदमतगार युसुफ मियां पहेली-सी बुझाता मालिक के सामने से हट गया।

अगले दिन बी हमीदन भाई की खोज में श्रीनगर जाने के लिए तैयार हो गई। ज्योंही वह कार में बैठने लगी उसने ननकू नवाब को देखकर कुछ पहचाना। उसने कार के पायदान से अपना कदम पीछे हटाकर पूछा— "शायद आप हाजी साहब के दामाद हैं? कल…"

"हां बी साहिबा, पर आप फिक्र न करें। हर इंसान जुदा-जुदा है। मुझे आपसे पूरी हमदर्दी है। जब मैंने युसूफ मियां से तुम्हारी तकलीफ सुनी तो मुझे बेहद रंज हुआ। दुनिया में भाई से बढ़कर कौन है।"

फिर उन्होंने खिदमतगार की ओर मुखातिब होकर कहा—"युसुफ मियां, तुम बी साहबा के पास पीछे की सीट पर बैठो, मैं आगे ड्राइवर के पास बैठता हूं। इनकी पूरी हिफाजत रखना।"

बी हमीदन ने कुछ क्षण संदेह किया फिर खुदा का नाम लेकर कार में जा बैठी। कार बस्ती-पर-बस्ती पीछे छोड़ती श्रीनगर के मार्ग पर पूरी रफ्तार में चली जा रही थी और बी हमीदन दूर-दूर तक फैले खेतों में भाई के नजर पड़ने की कामना कर रही थी।

ननकू नवाब काश्मीर पहुंचते ही बहुत व्यस्त हो गए। उन्होंने हमीदन को अपने मकान में ठहराकर उसकी सुख-सुविधा की व्यवस्था तो कर दी, परंतु उससे इच्छानुकूल एकांत भेंट करने का सुयोग मिलने में विलम्ब होता गया। वे हमीद का पता लगाने के लिए अपने आदमियों को उसके सामने आदेश तो देते रहे परंतु हुआ कुछ नहीं। बहकाने की युक्ति मात्र थी। हमीदन भी ननकू नवाब की व्यस्तता और छोटे-बड़े सरकारी-गैरसरकारी बहुत लोगों का उनसे मिलने के लिए आना एकान्त में गम्भीर बातें करना आदि बातों से प्रभावित होकर उन्हीं की खोज-खबर पर विश्वास करती रही। कभी-कभी वह भी बाहर घूम आती थी। दरअसल यहां आकर नवाब राजनीति के गूढ़ षड्यन्त्र में अनायास ही व्यस्त हो गए थे। उन्हें ज्ञात हुआ कि जिन्ना और लियाकत अली कबायलियों की मदद से तुरन्त ही काश्मीर पर हमला करके उसे पाकिस्तान में मिलाने की सोच रहे हैं। ननकू नवाब का शेरे-काश्मीर बनने का स्वप्न नष्ट होनेवाला था। वे एक दम चौकन्ने हो गए और उन्होंने हमीदन को अभी छेड़ना स्थगित कर काश्मीर की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। बहुत-सी अशांत करनेवाली बातें उनके मन में घूमने लगीं। पहले काश्मीर और बाद में हमीदन।

## 23. फौलादी खंजर

भारत-विभाजन की ढहती दीवारों में दबे पड़े असंख्य क्षतविक्षत नर-नारियों का करुण क्रन्दन और चीत्कार अभी दिग्दिगन्त में प्रतिध्वनित हो ही रहा था और मिट्टी का तेल छिड़ककर जीवित स्त्री-बच्चों को जलाकर खाक करके बुझती हुई ज्वालाओं की गर्म राख अभी ठण्डी भी नहीं हुई थी कि एक दूसरा फौलादी खंजर सान पर चमकाया जा रहा था। उसकी तेज धार को विषाक्त किया जा रहा था।

भारत-विभाजन के बाद एक भयानक अंधेरी रात में नई-दिल्ली में

स्थित अंग्रेज कमान्डर-इन-चीफ के विशाल भवन का बाह्य वातावरण बिलकुल शान्त दीख रहा था, परन्तु अन्दर के खास कमरों में अत्यन्त सतर्कता से एक खास दावत का इन्तजाम किया जा रहा था। बाहर की बत्तियां गुल थीं, परन्तु अन्दर के खास कमरे धक्-धक् दिप रहे थे।

फील्ड मार्शल लॉकहार्ट बेचैनी से अपने कमरे में टहल रहे थे। मुट्ठी में एक महत्त्वपूर्ण पत्र था। वे कई बार पढ़ चुके थे। मस्तिष्क में विभिन्न विचारों का तूफान उठ रहा था। वे उस योजना को मुकम्मिल किया चाहते थे, जिसे वे गत दो सप्ताह से कार्यान्वित करने के तमाम ताने-बाने बुनते रहे थे। सुगन्धित सिगरेट एक के बाद एक खत्म होती जाती थीं। इसी समय घड़ी ने टन-टन करके ग्यारह बजाए। उन्होंने चौंककर घड़ी की ओर देखा, चेहरे पर व्यग्रता और चिंता के लक्षण प्रकट हुए। इसी समय उनके खास खानसामा मिर्जा सईद ने आकर झुककर सलाम किया और कहा—"हुजूर खाना ... दिया गया है।"

"क्या वक्त हो गया?"

"जी हां हुजूर, ग्यारह बजे खाना चुनने का हुक्म हुआ था। ग्यारह बज चुके।" उसने एक बार दीवार पर लटके हुए घण्टे पर दृष्टि डाली।"

"ओह ठीक है, लेकिन मिर्जा, मैं अपने मेहमानों की प्रतीक्षा कर रहा हूं। खाना तीन आदमियों का चुना गया है न?"

"जी हां, हुजूर, मैं जानता हूं कि खुद गवर्नर-जनरल लार्ड माउंटबेटन भी आज हुजूर के साथ खाना खाएंगे।"

"चुप, यह बात पोशीदा रखने की है। गवर्नर-जनरल नहीं चाहते कि आज की इस दावत की चर्चा की जाय।"

"तो खुदाबन्द, बन्दे के होंठ सिले हुए हैं, सिर्फ हुजूर से ही अर्ज किया है।"

"तुम बहुत अकलमन्द हो मिर्जा, हम तुमसे खुश हैं, हमारे विलायत जाने के बाद तुम अगर पाकिस्तान जाना चाहो तो हम वहां के गवर्नर-जनरल को एक चिट्ठी लिखकर तुम्हें खास गवर्नर-जनरल का खानसामा मुकर्रर करा देंगे।

"शुक्रिया हुजूर, मगर मैं किसी खास वजह से दिल्ली छोड़ना नहीं पसन्द करता।"

"वह खास वजह क्या है ?"

"खुदावन्द, गुलाम ने हमेशा आप जैसे शेरदिल अंग्रेज अफसरों और जनरलों की हाजिरी बजाई है, अब इस बुढ़ापे में किसी हिन्दुस्तानी की नौकरी मैं न कर सकूंगा, न उसका हुक्म मान सकूंगा।"

"लेकिन पाकिस्तान का गवर्नर-जनरल मिस्टर जिन्ना है, बहुत बड़ा आदमी।"

"जी हां, पर वह मेरे ही जैसा मुसलमान और हिन्दुस्तानी है।"

"बहुत बड़ा मुसलमान।"

"बड़ा-छोटा क्या ? सब मुसलमान बराबर हैं, भाई हैं ?"

"तो भाई की नौकरी नहीं करेगा ?"

"नहीं हुजूर, भाई की खातिर करूंगा, उससे मुहब्बत करूंगा, मगर नौकरी नहीं।"

मार्शल जोर से हंस दिए। हाथ की सिगरेट फेंककर नई सिगरेट जलाई फिर कहा—"मिर्जा तुमसे हम बहुत खुश हैं, बहुत खुश, हां, खयाल रखना, खाना खाने के वक्त सिवा तुम्हारे और कोई आदमी नहीं रहना चाहिए।"

"मैंने ऐसा ही बन्दोबस्त किया है सरकार, मैंने सब हिन्दुस्तानी नौकरों को छुट्टी दे दी है। मैं जानता हूं हुजूर आज किसी पेचीदा खास मसले पर मस्लहत करने में मशगूल हैं।"

"यह तुमने कैसे जाना ?"

"हुजूर गवर्नर-जनरल इस वक्त गुपचुप हुजूर के दस्तरखान पर खाना खाने बिला वजह नहीं आ सकते सरकार, खासकर उस हालत में जबकि एक और मेहमान भी निहायत पोशीदा होकर तशरीफ ला रहे हैं।"

"तुम बहुत बड़ा घाघ है मिर्जा, लेकिन तुम यहां दुश्मनों के मुल्क में क्या करोगे। पाकिस्तान चले जाओ।"

"नहीं, मैं यहीं रहकर पाकिस्तान की खिदमत कर सकता हूं।"

"वह किस तरह ?"

"जिस तरह हुजूर कर रहे हैं।"

मार्शल ने भौंहें सिकोड़कर मुंहजोर खानसामा की ओर देखा। खानसामा ने मुस्कराकर जमीन तक झुककर सलाम किया और कहा—"अगर हुजूर मेरी सिफारिश हिन्दुस्तान के आपके बाद होनेवाले जनरल बूचर से

कर दें तो अच्छा हो, यह गुलाम उसी तरह मेहनत दयानतदारी से जनरल साहब की खिदमत करेगा जैसे हुजूर की करता रहा है।"

"अच्छा-अच्छा, मिर्जा, हम ऐसा ही करेगा। लेकिन वक्त हो गया। मैं जिस आदमी का इन्तजार कर रहा हूं वह क्यों नहीं आया? गवर्नर-जनरल ठीक साढ़े ग्यारह बजे आयेंगे। उस आदमी को दस मिनट मेरे पास अकेले रहना चाहिए। सवा ग्यारह हुआ। सिर्फ पन्द्रह मिनट हैं।

मार्शल फिर चिन्तित भाव से टहलने लगे और सिगरेट का कश लगाते रहे। खानसामा कमरे के कोने में एक ओर अदब से खड़ा हो गया। कुछ ही क्षणों में लियाकत अली ने कक्ष में प्रवेश किया और उसके पांच मिनिट बाद माउन्टवेटन ने। लाकहार्ट उनका स्वागत कर उन्हें खाने की मेज पर ले गए। बैठते ही माउन्टबेटन ने लाकहार्ट से पूछा—"कनिंघम का वह पत्र कहां है?"

"सर लाकहार्ट ने पत्र टेबल पर रखकर कहा—"यह है।"

लार्ड माउन्टबेटन ने पत्र उठाकर पढ़ा। पढ़कर टेबल पर रखते हुए उन्होंने लाक से फिर से पूछा—"यह पत्र आपको मिला कब?"

"आज दोहपर के समय।"

"आज 22 तारीख है। पत्र 20 तारीख को लिखा गया है। इसका मतलब यह है कि आज प्रातःकाल ही काश्मीर पर हमला हो गया।"

"मैं भी यही समझता हूं।"

"और आप मिस्टर लियाकत अली?"

"जरा पत्र मुझे दीजिए, मैं देखूं तो सही, पत्र में लिखा क्या है?"

उन्होंने पत्र लेने को टेबल पर हाथ बढ़ाया।

सर लाकहार्ट ने झट से पत्र उठा लिया और कहा—"मैं उसे आपको सुनाए देता हूं। पत्र में सीमाप्रान्त के गवर्नर सर कनिंघम ने लिखा है कि—मेरे अथक प्रयत्न के बावजूद पाकिस्तान सरकार ने कबीलेवालों की सहायता से कश्मीर पर हमला करने का निश्चय किया है, और सीमाप्रान्त के मंत्री खां अब्दुल कयूमखां तथा अन्य अधिकारियों ने काश्मीर की सीमा पर अत्यधिक संख्या में कबायलियों को एकत्र कर लिया है।"

"बस इतना ही लिखा है? पाकिस्तान के प्रधान मंत्री मिस्टर लियाकत अली ने तैश में आकर कहा।"

"और भी कुछ है, सर कनिंघम ने लिखा है—सम्भवतः यह पत्र आपके पास पहुंचने के पहले ही काश्मीर पर कबायलियों का हमला प्रारम्भ हो सकता है।"

"ऐसा पत्र लिखना सर कनिंघम की पक्की नमक-हरामी है। क्या पाकिस्तान सरकार ने इसीलिए उन्हें गवर्नर की कुर्सी पर बहाल रखा है कि अपनी सरकार की हलचलें हिन्द सरकार के अफसरों को भेजें?"

माउन्टबेटन ने सहज शान्त स्वर में कहा —"पहले आप यह बताइए कि यह बात सच है?"

"यदि सच हो तो?"

"यदि सच है तो इसे हिन्द सरकार पर प्रकट करने की कोई आवश्यकता नहीं है।" लार्ड माउन्टबेटन ने धीरे-धीरे फुसफुसाते हुए कहा।

"आपकी बात से मैं सहमत हूं।" लियाकत अली ने कहा।

"आप सहमत हो सकते हैं, परन्तु हिन्द सरकार को तो यह बात तुरंत मालूम हो जाएगी। पत्र के लिखे अनुसार आज प्रातः काश्मीर पर हमला हो चुका है। परंतु क्या कारण है कि उसकी अभी तक सूचना हिन्द सरकार को नहीं मिली?"

"इसका कारण चाहे जो हो, और भले ही हिन्द सरकार को मालूम हो जाए, पर सर कनिंघम का यह पत्र केवल जनरल लाकहार्ट को सूचना-मात्र है, इस पर कोई आफिशियल कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए।"

"किन्तु मैं हिन्द सरकार का नौकर हूं। अतः मेरा कर्त्तव्य है कि मैं यह पत्र हिन्द सरकार के सामने उपस्थित करूं।"

"आप कर चुके सर लाकहार्ट, आपने हिन्द के गवर्नर-जनरल को पत्र दिखा दिया।" लियाकत अली ने धीमे किन्तु दृढ़ स्वर में कहा।

"किन्तु क्या यह यथेष्ट है, मैं गवर्नर-जनरल से निवेदन करता हूं।"

माउन्टबेटन कुछ देर जनरल की ओर देखते रहे, फिर उन्होंने सूप में चम्मच डुबाते हुए कहा—"अभी यह बात यहीं रहे मार्शल, मैं जैसा उचित होगा, अपने मंत्रि-मण्डल को इस सम्बन्ध में सूचना दे दूंगा।"

लियाकत अली ने तनिक आगे झुककर कहा—"सर लाकहार्ट, क्या आप मुझे क्षमा न करेंगे यदि मैं आपको यह स्मरण दिलाऊं कि आप जब सीमा प्रान्त के गवर्नर थे, और कायदेआजम ने आपको दावत दी थी, तब

आपने कायदेआजम से कहा था कि वे यदि आपको हिन्द सरकार का सेनापति बनने में मदद करेंगे तो आप काश्मीर फतह करके पाकिस्तान को नजर कर देंगे ?"

"मैंने जो वादा किया था मैं उस पर दृढ़ हूं मिस्टर लियाकत अली। केवल पाकिस्तान के हित के लिए नहीं, ग्रेट ब्रिटेन के हित के लिए भी, जिसके हितों में सबका हित है। इसीसे मैंने कनिंघम को काश्मीर पर हमले के लिए प्रोत्साहित करके कबायलियों को एकत्रित करने पर उस समय नियोजित किया था। उस समय कनिंघम ने कबायलियों को एकत्र करने में भारी प्रयत्न किया था, तथा सर मूडी ने आक्रमण-कार्यों में प्रचार के लिए पूरी शक्ति लगाई थी।"

"तभी तो मैं कहता हूं सर लाकहार्ट कि कनिंघम ने जो अब आपको यह पत्र लिखा यह उनकी पाकिस्तान के प्रति नमक-हरामी है।"

"और मैं यदि इस पत्र को गुप्त रखूं तो हिन्द सरकार मुझे नमक-हराम न कहेगी ?"

"कहने दीजिए सर लाकहार्ट, पाकिस्तान और ग्रेट ब्रिटेन के भाग्य साथ बंधे हैं। ग्रेट ब्रिटेन के प्रबल शत्रु के द्वार पर ब्रिटेन का सच्चा और वीर पहरेदार पाकिस्तान है। अंग्रेज पाकिस्तान की जो सेवा करेंगे, पाकिस्तान उसे कभी नहीं भूलेगा।"

"तो मैं अपने वचन को दुहराता हूं कि मैं पाकिस्तान को काश्मीर भेंट करता हूं। वे काश्मीर को अधिकृत कर लें।"

लार्ड माउन्टबेटन शोरबा समाप्त कर चुके थे। अब इस वाक्य से चौंककर इधर-उधर देखने लगे। मिर्जा सईद दीवार से चिपके खड़े चुपचाप उन बातों को सुन रहे थे।

लार्ड माउन्टबेटन को अपनी ओर ताकते देख वे अदब से झुके और आगे बढ़े। लार्ड माउन्टबेटन ने कहा—"नहीं, नहीं, धन्यवाद, अभी मुझे तुम्हारी खिदमत की आवश्यकता नहीं है।" उन्होंने जनरल की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा। जनरल ने कहा—"मिर्जा अब तुम जा सकते हो।"

मिर्जा सईद सिर झुकाकर चला गया। माउन्टबेटन ने धीमे स्वर में कहा—"मार्शल, हमें खुल्लमखुल्ला इस प्रकार बात नहीं करनी चाहिए। हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि हम भारत सरकार के नौकर हैं।"

"ओह, मैं उसकी क्या परवा करता हूं ?"

"परन्तु हमें अपनी जिम्मेदारी पर ध्यान देना चाहिए।"

"तो गवर्नर-जनरल जैसा आदेश दें।"

"प्रश्न यह है कि अब तक अवश्य ही काश्मीर पर आक्रमण की सूचना मेरे मन्त्रियों को मिल चुकी होगी। कल सुबह ही इस पर जोरों की कार्यवाही होगी, आपकी भी बुलाहट होगी तब आप क्या करेंगे ?"

"आप क्या परामर्श देते हैं ?"

लियाकत अली ने बीच ही में कहा—"मैं अर्ज करूंगा सर लाकहार्ट, सिर्फ 15-20 दिन की बात है, फिर काश्मीर की घाटियां बर्फ से पट जायेंगी। आप नेहरू को यह पट्टी पढ़ाइये कि सर्दियों में लडना असम्भव है, सेना को रसद, कुमुक कुछ न मिलेगी और वह नष्ट हो जायगी। इस तरह डराकर उन्हें काश्मीर पर फौज भेजने से रोकिए।"

## 24. घात-प्रतिघात

काश्मीर पर पाकिस्तान के अयाचित आक्रमण की खबर से भारत सरकार चिन्तित हो उठी। उसने तत्काल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और गोपनीय युद्ध परामर्श समिति की बैठक गवर्नमेंट हाउस में बुलाई। गवर्नर-जनरल लार्ड माउन्टबेटन प्रमुख पद पर आसीन थे। नेहरू अत्यन्त उत्तेजित थे। और पटेल अत्यधिक गम्भीर। सर लाकहार्ट चुपचाप सिगरेट का धुआं उड़ा रहे थे, और जनरल बूचर उनकी बगल में चुपचाप अपने चमचमाते तमगे लटकाए रुआबदार ढंग से बैठे थे। मेजर जनरल करिअप्पा, कैप्टन थिमैया, मेजर कुलवन्तसिंह और बिग्रेडियर उस्मान चुपचाप अपनी कुर्सियों पर बैठे थे। सभी का ध्यान पण्डित जवाहरलाल नेहरू की उत्तेजित और अशान्त मुद्रा पर था। उन्हीं ने बातचीत प्रारम्भ की। उन्होंने कहा—"सर लाकहार्ट, क्या कारण है कि काश्मीर के इस हमले की सूचना हिन्द सरकार को 24 घण्टे देर से मिली ?"

"मैं इस सम्बन्ध में जांच कर रहा हूं, उसकी रिपोर्ट आपको मैं यथा-समय दूंगा।"

"आपने काश्मीर की रक्षा की कोई कार्यवाही की ?"

"वह मैं कैसे कर सकता हूं, जबकि काश्मीर हिन्द यूनियन में सम्मिलित नहीं है।"

"फिर भी काश्मीर भारतीय प्रदेश है, हिन्द सरकार उस पर कबायली लुटेरों के आक्रमण नहीं सहन कर सकती।"

"पर सम्भव है स्थिति उतनी गम्भीर न हो और वह कबायली लुटेरों का ही उत्पात हो।"

"आप क्या कहते हैं, मुझे अभी फोन पर सूचना..." उन्होंने एकाएक पटेल की आंखों में देखा और चुप हो गये।"

लार्ड माउन्टबेटन और सर लाकहार्ट ने सरदार की ओर देखा। नेहरू ने क्षण-भर रुककर कहा—"खैर, हमें फिलहाल तुरन्त काश्मीर को रक्षा-सम्बन्धी प्रारम्भिक कार्यवाही कर डालनी चाहिए।"

मेजर जनरल करिअप्पा ने कहा—"मेरा खयाल है सर लाकहार्ट प्रारम्भिक कार्यवाही कर चुके हैं।"

सरदार पटेल और नेहरू ने चौंककर करिअप्पा की तरफ साभिप्राय दृष्टि से देखा, उनके होंठों पर एक तीव्र मुस्कराहट थी। नेहरू ने सर लाकहार्ट की ओर देखकर पूछा—"इसका क्या अभिप्राय है?"

"पाकिस्तान के ब्रिटिश डिप्टी-हाई-कमिश्नर श्री डूयूक ने मुझे इस हमले की सम्भावना से सूचित किया था। इस पर मैंने रर्गतहादन जनरल ग्रेसी और जनरल मैकी को काश्मीर मोर्चे पर आवश्यक हिदायतें देकर भेज दिया था।"

"क्या आपने उन्हें कबायली लुटेरों को मार भगाने का आदेश दिया है?" सरदार पटेल ने गम्भीरता से पूछा।

"जी नहीं, मैंने उन्हें परिस्थिति का अध्ययन करने का आदेश दिया है। मैं विना हिन्द सरकार की अनुमति लिये सेना को युद्ध के जोखिम में फंसाना नहीं चाहता।"

मेजर जनरल करिअप्पा ने सहज शान्त स्वर में कहा—"मैं समझता हूं जनरल ग्रेसी और जनरल मैकी सर लाकहार्ट के आदेशों का वहां ठीक-ठीक पालन कर रहे हैं।" सर लाकहार्ट ने जलती हुई आंखों से मेजर जनरल करिअप्पा की ओर देखा, करिअप्पा उसी भांति होंठों में मुस्कराते रहे।

सर लाकहार्ट ने कठोरता से पूछा—"मेजर जनरल करिअप्पा, आप

क्या कहना चाहते हैं ?"

"सर, मेरा अभिप्राय यही है, वहां आक्रमणकारियों के साथ बहुत से अंग्रेज अफसर भी हैं, बहुत-से जनरल ग्रेसी और जनरल मैकी के मित्र हो सकते हैं। उनसे मिलकर उनकी सहायता से सम्भवतः ग्रेसी और मैकी हुजूर के आदेशों को ठीक-ठीक पूरा कर सकें।"

सर लाकहार्ट होंठ चबाकर रह गये। हाथ की सिगरेट उन्होंने फेंक दी। उन्होंने तिरछी नजर से लार्ड माउन्टवेटन की ओर देखा। वे नीची दृष्टि किए टेबल के कोने को गम्भीरतापूर्वक देख रहे थे। जवाहरलाल नेहरू परेशान थे। उन्होंने चिढ़कर खड़े होकर कहा—"यह सब क्या गोरख-धन्धा है, मैं साफ-साफ सब बात जानना चाहता हूं।"

"आप चाहते क्या हैं, पण्डित नेहरू ?" सर लाकहार्ट ने उनकी आंखों में आंखें डालकर कहा।

"मैं सत्य बात जानना चाहता हूं।"

"तो सत्य यह है कि काश्मीर पर कबायलियों ने हमला किया है।"

"आपने वहां कितनी सेना भेजी है ?"

"उतनी ही, जिससे लुटेरों को इधर भारतीय सीमा में घुसने से रोका जा सके।"

"किन्तु काश्मीर की रक्षा भी होनी चाहिए।"

"काश्मीर तो भारतीय संघ में सम्मिलित नहीं है।"

एकाएक पटेल तेज स्वर में खीज उठे—"यह प्रश्न आपके विचारने का नहीं है सर लाकहार्ट, आप हिन्द सरकार के नौकर हैं। काश्मीर की रक्षा के लिए तुरन्त सेना भेजनी होगी।"

"क्या गवर्नर जनरल की भी यही राय है ?" सर लाकहार्ट ने माउण्ट-बेटन की ओर देखा।

लार्ड माउण्टबेटन ने खड़े होकर धीरे से कहा—"यदि मेरी निजी राय आप पूछें तो मैं यह अधिक पसन्द करूंगा कि बजाय युद्ध करने के यह प्रश्न यू० एन० को भेज दिया जाय।"

"इसका मतलब ?" नेहरू ने तेजी से कहा।

माउण्डबेटन घबरा गए। वे समय से पहले ही एक भेद की बात कह गये थे। नेहरू ने कहा—"यदि कुछ लुटेरे देश पर आक्रमण करें तो हमें

निष्क्रिय होकर यू० एन० के पास दौड़ना चाहिए ?"

"मेरा ऐसा अभिप्राय नहीं है, बल्कि यह है कि यदि हमने सेना काश्मीर की सहायता के लिए भेजी तो पाकिस्तान सरकार सम्भव है, इससें पसन्द न करे और फलस्वरूप पाकिस्तान और हिन्द सरकार में संघर्ष छिड़ सकता है, जो सम्भवतः ठीक न होगा।"

"पाकिस्तान का काश्मीर से क्या सम्बन्ध हो सकता है, काश्मीर पाकिस्तान यूनियन में तो सम्मिलित है नहीं।"

"सो तो वह भारतीय यूनियन में भी नहीं है।"

पटेल ने बीच में ही बात काटकर कहा—"पाकिस्तान को छोड़कर शेष सम्पूर्ण भारत के प्रदेश हिन्द सरकार के संरक्षण में स्वभावतः ही हैं, हिंद सरकार देश के पृथक्-पृथक् टुकड़े होना सहन न करेगी। सर लाकहार्ट, आप काश्मीर तुरन्त सेना भेज दीजिए।"

सर लाकहार्ट ने खड़े होकर कहा—"यह एक खतरनाक योजना है। मैं होम मिनिस्टर को बताना चाहता हूं कि यदि हम काश्मीर में सेना भेजते हैं तो सब तैयारियों में हमें एक मास लग जाएगा। और सेना को मोर्चे पर पहुंचते-पहुंचते और पन्द्रह दिन। फिर यदि पाकिस्तान की प्रतिक्रिया हुई तो कहा नहीं जा सकता कि कितनी सेना वहां खपानी पड़ेगी। इसके सिवा सर्दी आ रही है। शीतकाल में वहां हम सेना को न कुमुक भेज सकेंगे न रसद। घाटियों में बर्फ पड़ जाने से यातायात की भारी असुविधा हो जायेगी। फल यह होगा कि हमारी सेना वहां घिरकर नष्ट हो जायेगी। इन सब बातों पर आप लोग विचार कर लें। मैं आशा करता हूं कि गवर्नर जनरल और माननीय मन्त्रिगण मुझसे सहमत होंगे।"

माउण्टबेटन ने कहा— "मैं सहमत हूं। अभी तो यही स्पष्ट नहीं हुआ है कि यह आक्रमण इस योग्य है भी या नहीं कि इसके विरुद्ध सेना भेजी जाय। फिर हमें पाकिस्तान से मोर्चा लेने की उलझनों में नहीं पड़ना चाहिए। मैं तो यू० एन० में यह प्रश्न भेजना पसन्द करता हूं। हां, भारत की सीमा की रक्षा अवश्य होनी चाहिए। उसके लिए आशा करता हूं कि सर लाकहार्ट ने समुचित व्यवस्था कर दी होगी।"

सर लाकहार्ट ने छाती पर हाथ रखकर कहा—"बिल्कुल समुचित माई लार्ड, आप विश्वास रखें कि भारतीय सीमाएं सर्वथा सुरक्षित हैं।"

पटेल ने फिर गरजकर कहा—"हम लोग भारतीय सीमाओं की सुरक्षा पर बातचीत नहीं कर रहे बेटन, हम काश्मीर पर किए गए आक्रमण को रोकने पर विचार कर रहे हैं। उसके लिए सेना भेजना अत्यन्त आवश्यक है। सर लाकहार्ट, आप तुरन्त सेना भेज दीजिए।"

"यदि ऐसा ही है तो जो सेना पहले भेजी जा चुकी है, वह अभी यथेष्ट है, मैं उसी को नये आदेश भेज देता हूं।"

पटेल ने गम्भीर दृष्टि से मेजर-जनरल करिअप्पा की ओर देखकर कहा—"करिअप्पा, मैं चाहता हूं कि आप काश्मीर सर लाकहार्ट का नया संदेश लेकर जायें।"

"मुझे दुःख है सरदार, मैं ऐसा नहीं कर सकता।"

नेहरू का चेहरा लाल हो गया। उन्होंने कहा—"क्या कारण है कि आप इन्कार करते हैं?"

सर लाकहार्ट ने कहा—"मैं हुक्म देता हूं करिअप्पा कि तुरंत काश्मीर के मोर्चे पर जाकर ग्रेसी की अधीनता में कार्य करें।"

"किन्तु मैं इन्कार करता हूं।"

"क्या आप अफसर के हुक्म को मानने से इन्कार करते हैं?"

"निसंदेह सर, मैं आपका हुक्म नहीं मान सकता।"

"क्या आप मार्शल ला के नियम जानते हैं?"

"निश्चय, सर लाकहार्ट।"

"क्या आप अपनी सफाई में कुछ कहना चाहते हैं?"

"सिर्फ एक शब्द।"

"क्या?"

"यह कि, आप और मैं हिन्द सरकार के नौकर हैं। आप मेरे अफसर अवश्य हैं, पर मैं आपके हुक्म से कोई ऐसा काम नहीं कर सकता जो हिन्द सरकार का विरोधी हो।"

"आप चाहते क्या हैं मिस्टर करिअप्पा?" सरदार ने पूछा।

"सिर्फ एक बात?"

"क्या?"

"यदि आप मुझे काश्मीर भेजना चाहते हैं, तो सब कुछ मुझ पर और मेरे साथियों पर छोड़ दीजिए। अंग्रेज अफसरों को तुरन्त बुला लीजिए।

मैं अंग्रेज अफसरों की मातहती में काम नहीं करूंगा।"

सर लाकहार्ट ने कहा—"ऐसा नहीं हो सकता।"

सरदार ने कहा—"मैं करिअप्पा की प्रार्थना स्वीकार करता हूं। सर लाकहार्ट, आप अभी काश्मीर के मोर्चे पर करिअप्पा की कमान में सेना भेज दें और अंग्रेज अफसरों को तुरंत वापस बुला लें। करिअप्पा की इच्छानुसार ही सब व्यवस्था कर दीजिए। थिमैया, कुलवन्त और उस्मान भी करिअप्पा के सहयोग के लिए तैयार रहने चाहिए।"

दिल्ली में जब यह गुप्त मीटिंग हो रही थी, उसी समय दिल्ली से दूर एक दूसरी गुप्त मीटिंग भी हो रही थी। शिमला के एक शानदार होटल में दो आदमी एकाग्रचित्त हो मेज पर फैले हुए एक मानचित्र को देखने में तन्मय थे। उनमें से एक बीच-बीच में लाल पैंसिल से उनमें कहीं-कहीं चिह्न करता जाता था। बातचीत नहीं हो रही थी। कमरे का द्वार भीतर से बन्द था। एक आदमी लम्बा तगड़ा था और उसके मुंह पर रुआबदार दाढ़ी थी। उसकी आयु 45 के लगभग होगी। दूसरा क्लीन शेव था। अपेक्षाकृत वह आयु में कम था परन्तु उसके नेत्रों से बुद्धिमत्ता टपक रही थी। पहला व्यक्ति आजाद हिन्द फौज का एक जनरल था तथा दूसरा व्यक्ति मेजर।

अन्त में जनरल ने सन्नाटा भंग किया। उसने कहा—"दोस्त मेजर, यह तो सारा काम ही खराब हो गया।"

"कैसे ?"

"हिन्द सरकार ने 40 लाख रु० वार्षिक की सहायता स्वीकार कर ली है, तथा सैनिक अफसरों की सहायता का भी उसने वचन दिया है। मेरी समझ में तो हमें सेना संगठन-कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिए।"

"परन्तु यह तो देखो मेजर, हिन्द सरकार ने सिर्फ हिसार, गुड़गांव और रोहतक जिलों में ही प्रयोग करने की आज्ञा दी है, मैंने सीमा-स्थित जिले मांगे थे और 90 लाख रुपया मांगा था।"

"रुपये की बात छोड़िए। रुपया और भी मिल सकता है। हमें सरकार की आर्थिक कठिनाइयों को भी तो देखना है।"

"परन्तु इसका क्या किया जाय?" जनरल ने मानचित्र में लाल पैंसिल से किए हुए निशानों की ओर उंगली उठाकर कहा।

मेजर उसका अभिप्राय न समझ सका। उसने कहा—"तो इसमें क्या

हर्ज है ? यही तीन जिले सही।"

"क्या पागल हुए हो मेजर, हमें क्या लाभ होगा ? रोहतक, हिसार और गुड़गांव के जिले हमारे प्रभाव में नहीं आयेंगे। वे पंजाब के जिले हैं भी नहीं। न इसकी भाषा पंजाबी है, न संस्कृति, फिर ये दिल्ली को चारों ओर से घेरे हुए हैं। हिन्द सरकार दिल्ली की एक सैनिक चहार-दीवारी बनवाना चाहती है। मेरा कुछ दूसरा उद्देश्य है।"

"वह क्या ?"

"क्या तुम अभी तक समझे नहीं, दोस्त ?"

"मैं तो यही समझ रहा हूं कि हमें पूर्वी पंजाब को सुरक्षित और अभय बनाने के लिए सैन्य संगठन करना चाहिए। ये तीनों जिले पूर्वी पंजाब की पूर्वी सीमाएं घेरे हुए हैं।"

"तो उस पर पूर्वी सीमा से क्या मुसीबत आने वाली है ? वहां तो हिन्द सरकार की राजधानी है। खतरा तो पश्चिमी सीमा पर ही है।"

"जब ये जिले सुरक्षित हो जायेंगे और वहां हमारे सुदृढ़ सैनिक-शिविर स्थापित हो जायेंगे तो आसानी से सम्पूर्ण पूर्वी पंजाब की सुरक्षा हो जायेगी।"

"मैंने सीमा प्रान्तीय जिलों में काम करना सोचा था, जो सिखों के पंजाबी इलाके हैं। मेरी योजना है, तीन लाख सिखों का सैनिक संगठन कर पंजाब की सीमा को सुदृढ़ बनाना।"

"मैं आपके साथ हूं, इससे सरकार के हाथ भी मजबूत होंगे।"

"ऐसा अभी नहीं कर सकते, जब तक पूरे अधिकार न मिल जायें।

"समझ गया; तो एक बार आप फिर दिल्ली जाकर नेहरू को समझाइये।"

"केवल नेहरू को ही नहीं; और भी एक आदमी को।"

"वह कौन ?"

"सर लाकहार्ट, हिन्द की सेना का सेनापति।"

"वह क्या विरोध करेगा ?"

"पक्का नमकहराम है। पाकिस्तान का एजेन्ट है।"

"क्या कहते हैं ? इतना बड़ा सेनापति, मैंने उसके अधीन युद्ध किये हैं।"

"परन्तु अब मैं तुम्हें उसके अधीन लड़ने की राय नही दूंगा।"

"परन्तु आप जो कुछ कह रहे हैं, क्या सच है?"

"अरे सच? मैं कहता हूं काश्मीर में जो कुछ हो रहा है, उसी की योजना है। उसने पाकिस्तान को काश्मीर भेंट करने का वादा किया है।"

"सर लाकहार्ट? नहीं-नहीं, जनरल आप भूलते हैं।"

जनरल हंस पड़े। उन्होंने कहा—"मेरा एक-एक अक्षर सही है। नेहरू सरकार धोखा खायेगी। यदि पंजाब की पश्चिमी सीमाएं सुरक्षित हो जायें, तो फिर सम्पूर्ण हिन्दुस्तान पूर्ण सुरक्षित है। सिंगापुर और बर्मा में हमारे सामने जो कठिनाइयां थीं वे यहां नहीं हैं। यहां हमारा देशीय और जातीय संगठन है। हमारे साथ वे लाखों वीर हैं, जिनके कलेजे जले हुए हैं और जो सर्वस्व खो चुके हैं, पंजाब-निवासी लोहे के आदमी हैं और उन्हीं में हिंदुस्तान की रक्षा करने की शक्ति है।"

मेजर ने चुपचाप हाथ बढ़ा दिया, जिसे जनरल ने बड़े जोश से पकड़ लिया। फिर कहा—"मैं आज ही दिल्ली जा रहा हूं। तुम पश्चिमी पंजाब की सीमा पर जाकर सैन्य संगठन प्रारम्भ कर दो। जैसे भी होगा मैं अपने उद्देश्य को पूरा करूंगा। परन्तु नेहरू की एक बगल में शो बाय है और दूसरी में वह 'बाघ'।"

"शो बाय कौन?"

"ओह भूल गए, अजी वही आजाद, जो पक्का मुसलमान है। नेहरू उसे छोड़ नहीं सकते।"

"और बाघ कौन?"

"पटेल, और कौन? इन दोनों के रहते हमारी पटरी उनके साथ नहीं बैठ सकती। क्या तुम नहीं जानते कि नेताजी से भी उनकी नहीं बनी थी। वे यदि इनके साथ चिपके रहते तो क्या वह महान् कार्य कर सकते जो उन्होंने किया।"

"हां, यह तो ठीक है। फिर भी आप कोशिश कीजिए।"

"अच्छा, तो मैं चला। जय हिन्द!"

"जयहिन्द।"

## 25. पाप-मुक्ति

लाखों निरीह व्यक्तियों का खून बहाकर और भारत के मस्तक पर विभाजन का कलुष लगाकर जिन्ना अपनी खूनी नगरी का ताज अपने सिर पर रखकर दिल्ली त्याग कराची जाने के लिए हवाई जहाज पर सवार हुए। ज्योंही जहाज ने दिल्ली ने उड़ान भरी उन्होंने एक दृष्टि शहर पर डाली। उन्होंने बुदबुदाया—किस्सा खत्म हुआ। फिर अपनी बहन से कहा—"फातिमा, अब मैं कभी दिल्ली नहीं देख सकूंगा।"

फातिमा ने अपने भाई की इस कसम का अनुभव नहीं किया, इस समय उसके दिमाग में एक अन्य विषय आ रहा था। उसने भाई के मुख पर दृष्टि डालकर प्रश्न किया—"भाई, यह तुमने क्या किया? तुमने लियाकत को पाकिस्तान का प्रधानमंत्री क्यों बनाया, स्वयं क्यों नहीं बने? प्रधान मंत्री की सत्ता गवर्नर जनरल से अधिक होती है।"

फातिमा के इस प्रश्न से जिन्ना खीझ उठे। दिल्ली की ओर से दृष्टि हटाकर कहा—"जिन्ना की सत्ता सर्वोपरि है। जब तक राना लियाकत के साथ है वह छोटे भाई के समान वफादार रहेगा।"

"क्या तुम राना को इतना महत्त्व देते हो?"

जिन्ना ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। उन्होंने दृष्टि घुमाकर एक बार फिर दिल्ली को देखना चाहा, परन्तु हवाई जहाज पूरी तेजी से उड़कर दूर निकल गया था और दिल्ली उनकी दृष्टि से ओझल हो चुकी थी पाकिस्तान पहुंचकर उन्होंने अभी वहां पूरा अमल जमाया भी नहीं था कि काश्मीर को तत्काल हस्तगत करने की कार्यवाही उन्होंने कर दी। उन्होंने लियाकत से कहा—"लियाकत, भारत को संभलने का मौका मत दो। हमें 25 अक्तूबर को ईद की नमाज श्रीनगर में पढ़नी है।"

उनकी सनक भारत सरकार की क्षमता और सतर्कता के कारण पूरी नहीं हुई। अब शरीर और मन पूर्ण रूप से थक चुका था। आयु का इकहत्तरवां वर्ष पार कर चुके थे। खेद है कि एक वर्ष बीतते-बीतते जिन्ना का अन्त अत्यन्त असम्मानपूर्ण अवस्था में उसी कराची में हुआ जहां उन्होंने जन्म लिया और अपनी राजगद्दी अवस्थित की थी।

जिन्ना का शरीर लम्बा अवश्य था, पर कृशकाय थे। वृद्धावस्था में

उनकी हड्डियां उभर आई थीं। कोट-पैंट तथा अचकन शरीर पर लटकती सी अशोभनीय दीखती थी। पाकिस्तान किसी सदुद्देश्य का परिणाम नहीं, इस कृशकाय हठी व्यक्ति के अविवेक का परिणाम था। ईश्वर ने उन्हें आनंद नहीं दिया। एक भूल, एक प्रायश्चित, एक भय से वे सदैव व्याकुल रहने लगे, जिसे वे किसी पर प्रकट नहीं कर सकते थे। उसकी ज्वाला से वे अन्दर-ही-अंदर क्षीण होने लगे।

30 जनवरी, 1948 को गांधीजी की हत्या का समाचार सुनकर उन्होंने अपने सेक्रेटरी से कहा—"मेरे इस आवास के चारों ओर पक्की मोटी दीवार तत्काल बनाने की आज्ञा दे दो। मेरी सुरक्षा की पूरी व्यवस्था रखो।" परन्तु जुलाई आते-आते उनके शरीर में घुन लग चुका था। वे सारी शक्ति खोकर जीवन-समाप्ति की राह पर थे। वे बीमार पड़ गए। कराची से क्वेटा और क्वेटा से जियारत आकर उनकी चिकित्सा की जाने लगी इस समय उनका वजन केवल सत्तर पौंड रह गया था। लेफ्टिनेन्ट कर्नल इलाहीबख्श उनकी चिकित्सा के लिए नियत किये गए। कर्नल ने तुरंत जिन्ना के शरीर की परीक्षा की।

जिन्ना ने कहा—"कुछ नहीं डाक्टर मुझे ठंड लग गई है। इसी से बुखार बढ़ गया है। कफ भी आता है। क्वेटा में डाक्टर ने पेन्सलीन लान्जेज बताए थे, वह ले रहा हूं। उससे कुछ आराम है। पर मेरे पेट में गड़बड़ जरूर है। डाक्टर कर्नल ने जिन्ना के इस कथन को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अन्य डाक्टरों को बुलाकर कन्सल्ट किया। निर्णय हुआ कि जिन्ना फेफड़ों के रोग से मृत्यु-पथ की ओर बढ़ रहे हैं।

जब जिन्ना को यह बताया गया तो वे सुनकर कुछ क्षण चुप रहे, फिर पूछा—"क्या फातिमा को भी यह बात बताई गई?"

"हां।"

"नहीं कहना चाहिए था। आखिर वह औरत है। खैर, कहो मुझे कितने दिनों में आराम हो जाएगा?"

"नहीं कहा जा सकता, पर एक नर्स रखना जरूरी है।"

"नहीं, नर्स की जरूरत नहीं है, फातिमा रहेगी।" परंतु डाक्टर ने उन्हें समझाकर एक नर्स रखने की स्वीकृति प्राप्त कर ली।

नर्स ने आते ही टेम्प्रेचर लिया। जिन्ना ने पूछा—"कितना है?"

"सर बिना डाक्टर की आज्ञा आपको नहीं बता सकती।"

डाक्टर ने आकर कहा—"सर, आपका सिल्क का पाजामा पतला और ठंडा है। इससे आपको ठंड लगने का भय है।"

"मेरे पास सभी पाजामे सिल्क के हैं, पर अब मैं हैण्डलूम के कुछ बनवाऊंगा।"

"सर, सूती कपड़ा तो ठंडा ही रहेगा। आप आज्ञा दीजिए गरम ऊनी पाजामे सिला लिये जायं।"

"क्या इतना खर्च करना जरूरी है?"

"बहुत जरूरी, सर!"

"आल राइट, मैं स्वीकार करता हूं।"

जिन्ना की बीमारी के सम्बंध में अनेक प्रकार की अटकलें पाकिस्तान में फैल रही थीं। उनको दूर करने के लिए लियाकत अली स्वयं जियारत आए और डाक्टर से जिन्ना की बीमारी की विस्तृत जानकारी चाही। परन्तु डाक्टर ने उन्हें कुछ भी बताने से इंकार कर दिया।

जिन्ना ने डाक्टर से प्रश्न किया—"क्या लियाकत को कुछ बताया?"

"नहीं सर।"

"ठीक किया, अपने मुल्क को मैं ही अपनी बीमारी बताऊंगा।"

एक सप्ताह बाद फेफड़ों का एक्सरे लिया गया, उससे ज्ञात हुआ कि वे अधिक खराब हो चले हैं। अतः डाक्टरों ने एक अन्य कुशल अंग्रेज नर्स को जिन्ना की देख-रेख सौंपी। उसने आते ही अपने रोगी का बिस्तर ठीक किया और तकियों को थोड़ा ऊंचा करने लगी। जिन्ना ने कहा—"मुझे मत छेड़ो, मुझे मत छेड़ो।"

"यदि आप मेरी मदद नहीं चाहते तो मैं नहीं छेड़ूंगी। परंतु डाक्टर ने मुझे ऐसा करने की आज्ञा दी है।"

जिन्ना की भृकुटी पर बल पड़ गए। उन्होंने कहा—"मैं किसी की आज्ञा नहीं मानता, आज्ञा देता हूं।"

नर्स ने भूल सुधारते हुए कहा—"सर, डाक्टर ने प्रार्थना की है।"

"तब ठीक है।" नर्स ने तकिया ठीक करके उन्हें दवा दी परंतु जिन्ना नें तकिये हटा दिए।

चौथे दिन नर्स ने डाक्टर से ऐसे मरीज की तीमारदारी करने में अपनी

असमर्थता प्रकट की। उसने कहा—"यहां मर्द नर्स ठीक रहेंगी।"

जब डाक्टर ने जिन्ना से नर्स की आपत्ति निवेदन की, तब उन्होंने हठपूर्वक कहा—"नहीं यही रहे।"

अगले दिन जब नर्स ने जिन्ना के बालों पर ब्रश और कंघा किया तब उन्होंने मुस्कराकर नर्स की ओर देखा और कहा—"तुम मेरे बालों को सदुपयोगी बना रही हो।"

मरीज के स्वास्थ्य में प्रगति न देखकर डाक्टरों ने उन्हें वहां से हटाकर पुनः क्वेटा ले जाने का निर्णय किया। जिन्ना ने उनकी बात सुनकर कहा—"ठीक है, पर पहले मेरा वस्त्र-विन्यास ठीक करो।"

अशक्त अस्थि-पंजर शरीर पर नई कोट-पतलून, नये पम्प शू पहन और दाहिनी आंख पर एक ताल का नया चश्मा चढ़ाकर वे चलने को तैयार हुए। बढ़िया रेशमी रूमाल को उन्होंने अपनी उंगलियों में पकड़ा और स्ट्रेचर पर लेट गए। स्ट्रेचर पर लिटाकर जब उन्हें कार तक लाया गया, तब डाक्टर ने उन्हें गोद में उठाकर सीट पर लिटा दिया। इतने परिश्रम से ही डाक्टर हांफ गए। जिन्ना ने कहा—"तुम भी हांफ रहे हो, मैं भी हांफ रहा हूं, थोड़ा सुस्ता लो।"

क्वेटा पहुंचने पर उन्हें रेजिडेन्सी में रखा गया। यहां की जलवायु ने उन्हें कुछ लाभ पहुंचाया। डाक्टर ने परीक्षा करके उन्हें बताया कि आपके फेफड़ों में चालीस फीसदी लाभ हुआ है।

"डाक्टर, जब तुम मेरी चिकित्सा करने जियारत में पहले दिन पहुंचे थे, तब मैं जीवन की कामना करता था, पर अब मेरे लिए जीवन या मृत्यु समान हैं।"

डाक्टर ने जिन्ना की आंखों में आंसू छलकते देखे। उसने रूमाल से उन्हें पोंछते हुए पूछा—"ऐसा क्यों, सर?"

"मैं अपना कार्य पूर्ण कर चुका।"

अगले दिन से ज्वर बढ़ने लगा। जिन्ना ज्वर में अपने उद्गारों को बड़बड़ाने लगे। एक दिन वे जोर से चीख उठे—"आज काश्मीर कमीशन के साथ मेरा अपाइन्ट मेन्ट है। वे लोग अभी तक क्यों नहीं आए? उन्हें तुरन्त आने दो।"

डाक्टरों ने फातिमा से कहा—"आपके भाई का जीवन-दीप अब शीघ्र

बुझने वाला है।"

डाक्टरों ने फिर कन्सल्ट किया और उन्हें वहां से भी हटाकर कराची ही ले चलना निश्चय हुआ। अगले दिन सरकारी वायुयान की व्यवस्था कर उन्हें कराची ले जाया गया। अपराह्न में जहाज गौरीपुर में उतरा। उस समय कुछ ही व्यक्ति वहां उपस्थित थे। जिन्ना का पहुंचना बहुत गुप्त रखा गया था। और लियाकत अली को भी फोन द्वारा वहां न आने का आदेश दिया गया था।

हवाई जहाज से स्ट्रेचर पर लिटाकर जिन्ना को प्लेन से बाहर लाया गया और एक आर्मी एम्बुलेन्स में स्ट्रेचर को हिफाजत से रख दिया गया। नर्स और फातिमा उनके पास बैठ गईं। एम्बुलेन्स कराची के राज भवन की ओर रवाना हुई। मार्ग में एक शरणार्थी-शिविर के समीप पहुंचने पर वह बिगड़ गई और चल न सकी। निदान दूसरी एम्बुलेन्स लेने के लिए आदमी कराची दौड़ाया गया। शरणार्थी-शिविर के पास मलबे का एक बड़ा ढेर लगा हुआ था जिसके कारण वहां बहुत गन्दगी थी तथा मक्खियों के झुंड उड़ रहे थे। मक्खियां एम्बुलेन्स की ओर आईं और जिन्ना के अर्ध-मृत शरीर पर छा गईं। बड़ी कठिनाई से नर्स और फातिमा इन मक्खियों से जिन्ना के मुख को बचाती रहीं। डेढ़ घंटे बाद दूसरी एम्बुलेंस आने पर ही उन्हें मक्खियों से छुटकारा मिला। राजभवन में पहुंचने पर जिन्ना को पलंग पर लिटा दिया गया। वहां उन्हें हार्टटानिक की एक खुराक पिलाई गई, पर वह गले में उतरी नहीं—बाहर निकल आई। डाक्टरों ने रक्त-प्रवाह ठीक रखने के लिए नसों में इंजेक्शन देने का प्रयत्न किया, परंतु नसों ने काम करना बंद कर दिया था! डाक्टर ने कहा—"सर हम इंजेक्शन दे रहे हैं, आप जियेंगे।"

जिन्ना ने हाथ का संकेत करते हुए मृत वाणी में कहा—"नहीं, अब मैं चला।" कुछ क्षण बाद ही उनकी मृत्यु हो गई।

## 26. शिकार

फाल्गुन पूर्णिमा का दिन था। दिल्ली की पुरानी बस्तियों में होली की धूम थी। धूम क्या थी बेहूदा हुल्लड़बाजी थी। उस उन्मुक्त-संध्या को

नई दिल्ली कर्जन रोड के मोड़ पर ऊंचे वृक्षों और लताओं से ढकी एक शानदार कोठी के लॉन में एक बड़ा-सा रंगीन छाता लगा हुआ था। उसके नीचे चारों ओर बेंत की कुर्सियां पड़ी थीं, जिन पर भड़कीली पोशाक पहने अनेक भद्र-पुरुष और महिलाएं विराजमान थे। एक लम्बे टेबल पर सैंडविच, पेस्ट्री, दालमोठ, सोहन हलुवा और भांति-भांति के फल सजे थे। कुछ अतिथि लॉन में घूम-घूमकर परस्पर गपशप कर रहे थे।

सत्कारकर्त्ता थे दिल्ली के रईस सिन्हा साहब सिर पर चांदी-सी धवल गांधी टोपी, सफेद खद्दर की शेरवानी, और चूड़ीदार पाजामा क्रीमलेदर का सलेगशाही सादा जूता पहने, अंगुलियों में धुआं उगलती हुई सिगरेट—जिसके बीच चमकती अंगूठी का बड़ा-सा हीरा दिप रहा था, अपने अतिथियों से हंस-हंसकर बातें करते घूम रहे थे। प्रधान अतिथियों में सप्लाई कन्ट्रोलर श्रीवास्तव, कस्टोडियन जनरल अरोड़ा और उनकी पुत्री कुमारी उमा, डिप्टी मिनिस्टर आफ एजूकेशन बनर्जी और कुमारी मालती सक्सेना अपनी मण्डली जमाए गपशप कर रहे थे।

सिन्हा साहब की पुत्री रीता की 21 वीं वर्ष गांठ के उपलक्ष्य में आज इस चायपार्टी का शानदार आयोजन था। मेहमान आ रहे थे। चम्पकवर्णी सुषमा और कोमला की प्रतिमूर्ति रीता अपने पिता के साथ-साथ अतिथियों का मधुर मुस्कान से स्वागत कर रही थी।

श्रीवास्तव ने खड़े होकर कहा—"नमस्ते कुमारी रीता, मेरा हार्दिक अभिनन्दन स्वीकार कीजिए आज आपके जन्म नक्षत्र के उपलक्ष्य में।"

रीता ने मुस्कराकर हाथ जोड़ते हुए कहा—"आप अकेले ही आए चाचाजी, चाची को नहीं लाए ?"

"बाप रे, तुम्हारी चाची को लाने के लिए एक पूरा वैगन चाहिए। एक तो माशाअल्ला खुद भारी-भरकम, फिर बच्चों की एक फौज। पूरे सात हैं सिन्हा साहब।"

"तो क्या हर्ज है, बरकत ही है। मुझे तो अपनी रीता पर ही सब्र करना पड़ रहा है। क्या कहूं भाई, जबसे इसकी मां गई, मेरा तो संसार ही सूना हो गया। अब यही रीता है मेरी आंखों की रोशनी।"

"सौ बेटों के बराबर है रीता बिटिया। बैठो बेटी, मेरे साथ एक प्याला चाय पियो। अरे इस कार में कौन आया ?"

सिन्हा ने उधर देखकर और प्रसन्न होकर कहा—"अरे ये तो मिसेज प्रसाद हैं।" वे उनका स्वागत करने आगे बढ़ गए।

श्रीवास्तव ने पास बैठे अरोड़ा से कहा—"मिसेज प्रसाद के ठाठ ही निराले हैं। जब देखिए—शीनकाफ से दुरुस्त।"

"इसमें क्या शक है। दिन-दिन निखरती जा रही हैं। मिस्टर प्रसाद तो विवाह के दो वर्ष बाद ही चल बसे, परन्तु मिसेज प्रसाद को इसका अधिक गम नहीं रहा।"

"प्रसाद की छोड़ी दौलत और सोसाइटी ने दिल बहला दिया। तीस को पार कर चुकी हैं, पर उम्र से क्या, दिल तो अभी नया है।"

"नीयत बदली हुई है। लो वे इधर ही आ रही हैं।"

श्रीवास्तव हंस दिए। अरोड़ा के कान में कुछ कहा। इसी समय मिसेज प्रसाद उनके समीप आ पहुंचीं। श्रीवास्तव ने उठकर उनकी अभ्यर्थना की और एक कुर्सी पेश करते हुए कहा—"आइये बैठिए।"

"धन्यवाद" कहकर वे कुर्सी पर बैठ गईं। उन्होंने धीरे-से पूछा—"यह कान में क्या कहा?"

"यही कि इस समय यहां आकर आपने बड़ी कृपा की।"

"यह तो आप सबके सामने भी कह सकते थे।" यह कहकर वे भेद-भरी मुस्कान से श्रीवास्तव की ओर देखने लगीं।

अरोड़ा ने हास्य से कहा—"आखिर आप आ ही गईं।"

"अब भी शक-सुबहा है आपको?"

"आंखों से तो देख रहा हूं, मगर आंखें अक्सर धोखा दे जाती हैं।"

"तो मिनिस्टर साहब ने आपसे अभी इस्तीफा नहीं मांगा?"

अरोड़ा ने हंसते हुए चुटकी ली—"जी नहीं, आपके रहमोकरम से काम चल रहा है।"

"शुक्र है। कहिए बनर्जी साहब, दिल्ली पसन्द आई आपको?"

बनर्जी ने तुनककर कहा—"ओ बाबा रे, एकदम रद्दी।"

"वाह, नई दिल्ली तो गार्डन सिटी के नाम से मशहूर है।"

"गार्डन सिटी? एकदम झूठा। हाम कहता है यह दिल्ली एकदम सिटी नहीं है—आदमी का जंगल है।"

अरोड़ा बीच में कूद पड़े—"लेकिन ऐसी कास्मोपालिटन आबोहवा

आप कलकत्ता में नहीं पा सकते, मिस्टर बनर्जी। देश-देश के नररत्नों का ऐसा जमाव दूसरे शहर में कहां है।"

श्रीवास्तव ने अरोड़ा की बात उड़ाते हुए कहा—"तो इस भीड़-भाड़ से क्या लाभ है? भिन्न जाति, भिन्न देश और भिन्न आचार-व्यवहार। कास्मोपालिटन आबोहवा कहां रही?"

अरोड़ा ने मिसेज प्रसाद की ओर देखते हुए उत्तर दिया—"जातिभेद दिल्ली में कहां है? यहां तो सब नदी-नाले गंगा में गिरकर गंगाजल हो जाते हैं न मिसेज प्रसाद?"

मिसेज प्रसाद मजाक के मूड में थीं। उन्होंने कहा—"लेकिन दो नई जातियों का जन्म तो यहीं नई दिल्ली में हुआ है और मेरे ख्याल में दोनों एक-दूसरे के लिए अछूत हैं।"

"अरोड़ा ने अपनी बात का समर्थन न पाकर अप्रतिम होकर कहा—"यह आप क्या कह रही हैं? वे दो नई जाति कौन-सी हैं?"

"एक मिनिस्टर, दूसरे क्लर्क।"

बनर्जी जोर से उछल पड़े। उन्होंने कहा—"आप एकदम ठीक बोला। मिनिस्टर और क्लर्क। दोनों सरकार के नौकर हैं, मगर एक तनखा पाता बहुत, दूसरा कम। क्लर्क एम०ए० की डिग्री लेकर भी मारा-मारा फिरता, परन्तु मिनिस्टर अपढ़ भी चलता। नई दिल्ली का सब मकान का जुदा-जुदा टाईप। ये मकान पुकारकर बोलता—'हम मिनिस्टर का टाइप, तुम क्लर्क का टाइप।' ओ बाबा रे।"

इसी समय एक कीमती कार पोर्च में आकर रुकी। सबकी निगाहें उस ओर उठ गईं। कार के व्हील से उठते हुए व्यक्ति को देखकर मिसेज प्रसाद की आंखों में चमक आ गई। उन्होंने खड़े होते हुए कहा—"लीजिए ननकू नवाब आ गए।" और वह लपककर उनकी ओर बढ़ गईं।

श्रीवास्तव ने मिसेज प्रसाद के इस परिवर्तन को देख अरोड़ा से कहा—"ननकू नवाब को देखकर तो यह बाग-बाग हो जाती हैं और उनसे मुलाकात करने का एक भी मौका नहीं चूकतीं।"

"तो आपका क्या खयाल है कि मिसेज प्रसाद आपके लिए रिजर्व रहें।" अरोड़ा ने व्यंग्य कसा। मिस्टर बनर्जी कुछ कहने ही जा रहे थे कि नवाब साहब मिसेज प्रसाद के साथ बातें करते हुए वहां आ पहुंचे। नवाब

का व्यक्तित्व ऐसा था कि अनायास ही सबका ध्यान उन पर केन्द्रित हो जाता था। लम्बा भरा हुआ गोरा शरीर और मुस्कान बखेरता हुआ रोबीला चेहरा। ध्यान से देखने पर उस मुस्कान में कुटिलता झलकती थी। आंखें उनकी छोटी किन्तु चमकदार थीं। माथा चांदी के समान उज्जवल चमकदार था। वे एक कीमती बादामी सूट पहने हुए थे। वे तोल तोलकर धीरे-धीरे बोल रहे थे, जैसे वे अपने में ही केन्द्रित हों।

मिस्टर सिन्हा ने उनका स्वागत करते हुए कहा—"आप बिल्कुल ठीक वक्त पर आ पहुंचे नवाब साहब। बहुत शुक्रगुजार हूं।"

नवाब साहब ने कहा—"शुक्रिया। अरे, रीता कहां है ?"

रीता उमा से कुछ कह रही थी। उसने आगे बढ़कर नवाब साहब को नमस्कार किया।

"जन्म-दिन सौ बार मुबारक रीता।" यह कहकर उन्होंने अपने हाथ का पैकेट उसे पकड़ा दिया।

"यह क्या है अंकल ?"

'खोलकर देखो।"

रीता ने उसे खोल डाला। बहुमूल्य काश्मीरी शाल था। प्रशंसा से देखा और कंधे पर डाल लिया—"बहुत अच्छा है, अंकल।"

नवाब साहब खुश होकर हंसने लगे।

मिस्टर सिन्हा ने कहा—"आपने क्यों तकलीफ की नवाब साहब ?"

उत्तर मिसेज प्रसाद ने दिया—"नवाब साहब काश्मीर से आएं और रीता के लिए कुछ न लाएं, ऐसा तो सम्भव नहीं है।"

"बेशक, बेशक," नवाब साहब ने कहा और मिसेज प्रसाद की ओर धन्यवादप्रद दृष्टि से देखा। नवाब साहब ने आगे बढ़कर सबसे हाथ मिलाया और एक कुर्सी की ओर बढ़े।

मिस्टर सिन्हा ने अनुरोध किया—"आइए, पहले पार्टी का लुत्फ लिया जाय।"

सब लोग टेबलों की ओर चले। रीता की 21 वीं वर्षगांठ का बड़ा केक काटा गया और 21 बत्तियां जला-बुझाकर तालियां बजाई गईं। फिर खान-पान का दौर चला और रीता के जन्म-दिन की शानदार पार्टी नैशोत्सव में बदल गई। अतिथि अपनी-अपनी पार्टियों में बंट गए।

लताओं के झुरमुट में नवाब साहब ने मिसेज प्रसाद को ले जाकर कहा—"तुमने नेहरू से कहा ?"

"कह चुकी हूं, चिन्ता न करो। काश्मीर तुम्हारा है, तुम्हें कुर्सी से कोई हटा न सकेगा।"

"फिर भी हवा भरती रहो।"

"भरती ही हूं। काश्मीर के बाद तुम्हीं हो जबान पर।"

नवाब साहब ने इधर-उधर देखकर मिसेज प्रसाद के हाथ अपने हाथों में लेकर उन्हें गर्मा दिया। उन्होंने हंसकर कहा—"मेरे दिल की रानी, तुम्हारे ही प्यार से बंधा मैं लाहौर छोड़कर काश्मीर में जा बैठा हूं। अब काश्मीर मेरे ख्वाबों की दुनिया है, वही मंजिल है।"

"मैं यह राजनीति की बातें नहीं जानती नवाब ! तुम्हें जानती हूं—तुम्हें प्यार करती हूं, मेरे रोम-रोम में तुम्हारी सूरत है। जब तक मैं भारत सरकार की ओर से काश्मीर में हूं, तुम्हारी सब बातें पूरी करती रहूंगी। शरणार्थी लड़कियों और औरतों की घटनाएं क्या इस बात का सबूत नहीं हैं ?"

"यह तुम क्या कह रही हो, तुम काश्मीर की भाग्य-विधाता हो। यह हमारा सौभाग्य है कि नेहरू तुम पर इस कदर विश्वास करते हैं।"

"औरत दिल से प्यार करे, तब विश्वासिनी हो जाती है।"

"तुम्हारा इशारा किधर है, रानी ?"

मिसेज प्रसाद ने नवाब के सीने पर अपना सिर लगाकर कहा—"यहां, इधर। जब तुमसे मुझे प्यार है तब नेहरू क्या, मुझे और भी बहुत लोगों को विश्वास दिलाने का नाटक रचना पड़ता है।"

"तुम एक ब्रिलियन्ट फिगर हो, नाटक लफ्ज तुम्हारे लिए ठीक नहीं। तुम्हारा हर काम भारत की शान है।"

"खैर, यह कहो कितने दिन दिल्ली में रहोगे ?"

"तुम जब तक हुक्म दो।"

"एक हफ्ते ठहरो। नेहरू से, मिलाऊंगी जोर डालना, काश्मीर के लिए दी जानेवाली रक़म नाकाफी है, उसे दूना कर दिया जाय।"

"यही तो मैं तुमसे कहने वाला था, पर मान गया तुम मेरे दिल की सभी बातें कैसी खूबी से पढ़ लेती हो। परन्तु पिछली बार उन्होंने शर-

णार्थी-पुनर्वास तथा विभाजन की अन्य जरूरी मदों में होने वाले भारी खर्च का जिक्र किया था।"

"तो उससे काश्मीर को क्या ? काश्मीर के लोगों को शान्त रखने के लिए उनमें रुपया पानी की तरह बहाया जायगा। नेहरू सरकार कहीं से भी रुपया दे। मैं अतोल सम्पदा चाहती हूं नवाब, सोने का मेरा महल हो, इत्रों की नदियां उसमें बहें वहां तुम और मैं काश्मीर के स्वर्ग में दो हस्ती प्यार में डूबी रहें।"

नवाब ने उसे अपने निकट खींचकर कहा—"वह दिन बहुत नजदीक है रानी।"

मिसेज प्रसाद ने आकाश में खिलते पूर्ण चन्द्रमा को देखते हुए कहा, "कितना सुन्दर है।"

फिर कहा—"अच्छा तो तुम मेरी कोठी में पहुंचो, मैं आती हूं।"

"क्यों साथ ही चलें ?"

"नहीं, रीता से उस शाल की कीमत वसूल नहीं करोगे क्या ? आज होली है। मैं उसे लेकर अलग से पहुंचती हूं।" नवाब की मुस्कान खिल उठी। भेद-भरी दृष्टि से मिसेज प्रसाद को देखकर मुस्करा दिया।

## 27. मुक्ति

रात गहरी हो रही थी। होली की धूम अब नहीं थी। यूसुफसराय से होज खास होकर जो सड़क कुतुब की ओर जाती है, वह बिलकुल सुनसान थी। कभी-कभी दूर से आती किसी कार की रोशनी चमक उठती थी। केशव और हमीद सड़क के एक ओर अपनी बातों में लीन चले जा रहे थे। दोनों बहुत खुश थे और अपनी विनोदी बातों से रात के टहलने का आनन्द ले रहे थे। किसी बात पर गहरा हास्य करके हमीद एकदम चुप होकर गहरी उदासी में डूब गया। केशव ने उसको लक्ष्य करके कहा, "भाई हमीद क्या हुआ ? तुम हंसते हो तो कलेजा हिला देते हो, पर कभी-कभी यह क्या हो जाता है कि तुम गहरी उदासी में डूब जाते हो। अवश्य तुम्हारे दिल में कोई दुःख है जिसे तुमने मुझ पर आज तक प्रकट नहीं किया। मैंने भी अधिक नहीं छेड़ा। परन्तु मित्र, जिस स्थिति में हम दोनों

आत्मीय भ्रातृ-भाव में बंध गए हैं, उसे देखते हुए तुम्हें अपना दुःख मुझे बांट देना चाहिए। आज तक तुमने मुझे अपने घर का पूरा परिचय नहीं दिया। कभी-कभी इसी प्रकार गहरे उदास होकर हफ्ते-दो हफ्ते के लिए तुम दिल्ली से चले जाते हो, पर लौटकर फिर वही हास्य तुम्हारे स्वभाव में आ जाता है। क्या बात है, आज छिपाओ नहीं। होली का दिन है मिलन का दिन मित्र !"

हमीद ने कहा—"सुनो प्यारे भाई, तुम अब तक मेरे बारे में यही जानते हो कि मैं अकेला हूं। पर अमृतसर के खास चौक में मेरा शानदार घर था। ऐसा घर जिसे बड़े-बड़े रईस हसरत-भरी निगाह से देखते थे। मेरी बहन हमीदन अमृतसर की मशहूर गायिका थी। उसे तुम बाजारू औरत समझ सकते हो, परन्तु वह सिर्फ गायिका थी, संगीत और स्वर-लहरी की मलिका। गायन-कला ही उसका जीवन था। बड़े-बड़े रईस ही उसका गाना सुनने का हौंसला रखते थे। पर 27 अगस्त की मनहूस आधी रात के वक्त जब हम वहां से अपनी जान बचाकर भागे तो गली पार होते-होते वह मुझसे बिछुड़ गई। खोजता-ढूंढता पहले मैं लाहौर गया, फिर दिल्ली चला आया। उसका पता नहीं, कहां गई। जिन्दा भी है या मुझ भाई को याद करते-करते खुदा के घर गई। खुदा न करे ऐसा हुआ हो, ओह प्यारे भाई तुम नहीं समझ सकते कि उसे यदि तलवार से हलाल किया गया होगा तो वह कैसी तड़पी होगी। मैं कभी-कभी उस तड़प को महसूस करता हूं तो मेरा मन दुःख से उमड़ पड़ता है।"

हमीद के छलकते आंसुओं को देखकर केशव ने उसके मुख पर अपना हाथ रखकर कहा—"मित्र, अब बस करो। मैं समझ गया कि तुम्हारे हृदय में कैसी ज्वाला जलती रहती है। परन्तु इन्सान पर पड़ी मुसीबतें ही उसकी परीक्षा होती हैं। मैं यह भी समझ गया कि उस दुःख ने तुम्हें और भी बड़ा बना दिया है। हमीद ने अपने आंसुओं को पोंछकर कहा— "अगर तुम्हारी माता मुझे मां का प्यार देकर अपने पास रहने का हुक्म न देतीं तो मैं आवारा बन जाता। घूमता-फिरता रहता—खानाबदोशों की तरह। बड़ी तो मां हैं, जिन्होंने मुझे अपने सीने से लगाया।"

"पर हमीद, क्या तुम कह सकते हो कि बहन कहां गई होंगी ?"

"जरूर लाहौर गई होंगी। पर मैं लाहौर से आगे तक भी तलाश कर

आया। अब भी मेरी आंखें उसे ढूंढ़ती रहती हैं।"

"घबराओ नहीं बहन जरूर मिलेगी। ईश्वर की माया विचित्र है। वह बिछुड़े हुओं को अवश्य मिला देते हैं।"

"तुम्हारे मुंह में घी-शक्कर केशव भाई, ईश्वर करे हमीदन जिन्दा हो और मेरा उसका फिर मिलन हो।"

हमीद ने प्यार से केशव के दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिये। इसी समय दिल्ली की ओर से आती हुई किसी कार की कभी जलती कभी बुझती रोशनी ने उनका ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने समझा कि सवारी की लाइट खराब है, कहीं उछलने से कभी बुझ जाती है, साफ सड़क पर आकर फिर जल जाती है। पर ज्यों-ज्यों कार उनकी ओर बढ़ती गई, उनका ध्यान उसकी ओर केन्द्रित होता गया। पास आने पर देखा, शानदार बड़ी कार है, कभी धीमी चलती है, कभी तेज चलती है, लाइट कभी आन कभी आफ। और भी नजदीक आने पर कार में बैठी सवारियों की बातें सुनाई दीं, जिसमें बहस हो रही थी।

युवा लड़की का स्वर था—"कार घुमा दो मिसेज प्रसाद, तुम मुझे अपनी कोठी से दूर गलत रास्ते ले आई मुझे सन्देह है।"

"अरे वाह रीता, अरविन्द आश्रम पार करके मेरी दूसरी कोठी है। बस अब आ ही पहुंचे हैं। तुम तो बहुत डरपोक हो भई!" यह किसी प्रौढ़ स्त्री का स्वर था।

पहले स्वर ने दृढ़ता से कहा—"नहीं मैं अब आगे नहीं जा सकती—गाड़ी मोड़ लो अंकल।"

"नवाब साहब तुम्हें अभी वापस छोड़ आयेंगे रीता, वह देखो सामने ही अरविन्द आश्रम वाली सड़क है।"

"नहीं, प्लीज अंकल, गाड़ी मोड़ दो।"

दोनों युवक स्थिति को समझ गए। हमीद ने कहा—"केशव, लड़की के साथ जरूर गोलमाल है?"

"हां हमीद, उसे बचाना होगा।"

हमीद लपककर कार के बैक कैरियर पर बैठ गया। केशव नहीं बैठ सका—वह घिसटकर गिर पड़ा। कार और आगे चलकर झटके के साथ खड़ी हो गई। नवाब ने कार के पीछे कैरियर पर किसी वस्तु के गिरने का

आभास पाकर कहा—"क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं, तुम गाड़ी सुस्त चला रहे हो नवाब।" मिसेज प्रसाद ने नवाब की पीठ पर थोड़ा संकेत करके उत्तर दिया! पर रीता ने यह देख लिया। वह एकाएक चीखकर नवाब के ऊपर झुक गई और ब्रेक लगा दिये। नवाब भी कैरियर की स्थिति जानना आवश्यक समझ रहे थे। उन्होंने गाड़ी खड़ी होने दी और दरवाजा खोलकर बाहर आये। रीता तेजी से कूदकर सड़क पर आ गई, पर पैर मुड़ गया और गिर पड़ी। हमीद लपककर रीता के पास आ खड़ा हुआ।

नवाब ने गुस्सा होकर कहा—"तुम कौन ?"

हमीद ने कार में झांककर देखा, केवल एक औरत और बैठी थी। उसने नवाब के प्रश्न की उपेक्षा करके रीता को उठाकर खड़ा किया और कहा—"डरो नहीं बहन, मैं तुम्हारी मदद को हूं। क्या ये लोग तुम्हें बहकाकर ले जा रहे हैं?" नवाब ने हमीद को लात मारने का प्रयत्न करते हुए कहा—"बदमाश, तू कौन है?"

हमीद ने नवाब साहब की लात को लपककर पकड़ लिया और मरोड़ा दे डाला। नवाब साहब गिर गये। हमीद ने चीखकर कहा—"बदमाश, बहन को भगा रहा है।" फिर उसने रीता से कहा—"माफ करना बहन, अगर तुम कहो तो मैं चला जाऊं, नहीं तो इस गुंडे से तुम्हारी रक्षा करने में, मैं अकेला समर्थ हूं! डरो नहीं। यहां पास ही मेरा मकान है, मेरी मां और बहन यहीं रहती हैं।"

नवाब उठकर बैठ गए, पर टांग दुःख रही थी, वे लंगडाते हुए खड़े होने की कोशिश करते हुए बोले—"बदमाश!"

इसी समय उनके जबड़े पर मुष्टि प्रहार हुआ। हमीद ने चीखकर कहा—"गाली दी तो जान ले लूंगा। सच कहो क्या तुम बहन को भगाकर नहीं ले जा रहे हो? मैंने तुम्हारी कुछ बातें सुन ली हैं, इसी से कहता हूं कि बहन तुम्हारे साथ नहीं जाना चाहती।"

नवाब की नवाबी धूल में मिल चुकी थी। हमीद एक स्वस्थ युवक था, उस पर आक्रमण करना नवाब के लिए सम्भव नहीं था। इसी समय केशव भी अपनी चोट सहलाकर कार खड़ी होती देख वहां आ पहुंचा। उसने नवाब साहब को सहारा देकर कार की सीट पर बैठाया और

उनकी टांग दबाने लगा। उसने रीता से कहा—"चिन्ता न करो बहन, हम लोग अपने घर के बाहर सड़क पर टहल रहे थे तभी आपकी कार इधर आई और आपकी एक-दो बातें सुनकर हमने समझा कि आपका अपहरण किया जा रहा है। यदि यह सत्य है तो आप अब बिलकुल चिन्ता न करें। हम दो भाई आपकी मदद के लिए यहां हैं। आप जहां कहें वहां आपको पहुंचा दें। जैसी आपकी आज्ञा हो वही हम करें।"

रीता अभी तक हमीद को परख रही थी। उसे इस समय सहायता की आवश्यकता तो थी ही, पर रात इतनी बीत चुकी थी कि वह अनजान व्यक्ति पर भी कैसे भरोसा करे। परन्तु अब केशव की बातों और नवाब के प्रति उसकी मानव उदारता ने उसका भय कुछ दूर किया। उसने कहा —"क्या आप लोग मुझे कर्जन रोड पहुंचा सकते हैं?"

"अवश्य बहन, पर इस समय सवारी मिलने की सम्भावना कम ही है।" केशव ने कहा।

पर इसी बीच हमीद ने दिलासा दिया—"सवारी की फिक्र नहीं करनी होगी। बहन, क्या तुम कार ड्राइव करना जानती हो?"

"हां भाई, जानती हूं।"

"तो बस काम बन गया।"

उसने लपककर नवाब साहब को गोद में उठाकर पिछली सीट पर बैठा दिया, और मिसेज प्रसाद से कहा—"आप भी बहन जी पीछे तशरीफ रखें।" और वह खुद पीछे की सीट पर नवाब की बगल में बैठ गया। उसने रीता से कहा, "अब आप व्हील पर बैठकर कार ड्राइव करें। केशव तुम बहन के पास बैठो और पीछे बैठी इन देवीजी पर भी नज़र रखना। यहां मैं नवाब के पास बैठा ही हूं। दोनों जरा भी बोलेंगे तो अकेला ही गर्दन मरोड़ दूंगा।"

रीता ने क्षण-भर चकित भाव से कुछ सोचा और फिर केशव से कहा —"आइए।" और वह व्हील पर बैठ गई।

कर्जन रोड के अपने बंगले पर कार रोककर रीता उतर पड़ी। उसने दोनों युवकों से कहा—"मैं अपने घर सुरक्षित आ पहुंची, आप लोगों का बहुत धन्यवाद।" फिर उसने नवाब से कहा—"नवाब साहब, अब कभी रीता की चौखट न देखना।" केशव ने नवाब से पूछा—"क्या आप ड्राइव

कर सकेंगे ? टांग में ज्यादा तकलीफ तो नहीं ?"

नवाब ने गुस्से को पीकर कहा—"तकलीफ तो बहुत है, पर मेरी मदद करनी होगी। ड्राइव कर लूंगा।"

"ठीक है, तब मैं आपके पास बैठता हूं। आपको ठिकाने पर छोड़कर हम अपने घर लौट जायेंगे।"

रीता ने कहा—"नहीं, ऐसा नहीं होगा भाई। मैं अपना ड्राइवर भेजती हूं, वह इन्हें पहुंचा देगा।"

इसी समय कोठी से नौकर लोग इनके समीप आ पहुंचे उन्होंने सबको सलाम किया। रीता ने कहा—"ड्राइवर से कहो नवाब को घर छोड़ आये।" नवाब और मिसेज प्रसाद ने गर्दन नीची कर ली।

कार के चले जाने पर केशव ने कहा—"अब हमें आज्ञा दीजिये।"

रीता ने कहा—"मुझे प्रसन्नता होगी यदि आप लोग रात को यहीं आराम करें। परंतु आपके घरवालों को आपकी चिंता करने की संभावना हो तो फिर रुकने का अनुरोध करना अनुचित होगा। तब मैं आपको अपनी कार से आपके घर पहुंचा दूंगी। रात बहुत हो गई है मेरे पापा सो रहे हैं, उन्हें इस समय जगाना उचित न होगा। परंतु प्रातः आप यहां अवश्य आयेंगे और पापा से बातें करेंगे। वादा कीजिये।"

"यही उचित होगा।" कह और रीता को अंदर पहुंचाकर वे उसकी कार में अपने घर लौट पड़े।

## 28 बन्धन

प्रातः की चाय पर रीता ने सिन्हा साहब से रात की सब घटना बता दी। जिसे सुनकर वे गम्भीर हो गए। रीता रोने लगी। परंतु पिता यह सहन न कर सके। उन्होंने पुत्री को अपने हृदय से लगाकर कहा—"यह क्या बेटी, अब तो तुम सुरक्षित हो। ईश्वर ने ही तुम्हारी रक्षा की। पर मैं मिसेज प्रसाद और नवाब को इतना गिरा हुआ नहीं समझता था।"

यह कहकर वे फिर गम्भीर हो गए और कुछ देर कुर्सी पर आंखें मूंदे पड़े रहे। फिर उन्होंने व्यस्त भाव से खड़े होकर कहा—"अच्छा बेटी, तुम बैठो, वे दोनों युवक आएं तो बैठाना। मैं एक घण्टे में आता हूं।"

उन्होंने शोफर को कार लाने की आज्ञा दी। रीता ने अपनी आंखों के आंसू पोंछकर कहा—"कहां चले पापा ?"

"जरा उस कमीने नवाब की नब्ज देख आऊं।"

"अकेले मत जाइए, दोनों को आने दीजिए, साथ जाइए।"

"नहीं मैं अकेला ही जाना चाहता हूं। चिन्ता न कर।"

सिन्हा साहब कपड़े पहनकर चले गए। रीता अकेली बैठी रात की घटना पर विचार करने लगी। उसे यह स्मरण करके रोमांच हो रहा था कि रात के कुत्सित व्यवहार से वह किस प्रकार बाल-बाल बच गई। रात की पार्टी में वह काफी थक गई थी, उसकी इच्छा कमरे में जाकर आराम करने की थी, परंतु मिसेज प्रसाद के बार-बार प्लीज रीता! डीयर रीता प्लीज ओब्लाइज मी रीता! आदि अनुनय भरे वाक्यों से बाध्य होकर उसे मिसेज प्रसाद के साथ जाना पड़ा। सिन्हा साहब ने भी कहा—"जब इतना कह रही हैं तो पांच मिनट को चली जाओ बेटी, मिसेज प्रसाद की कोठी दूर ही कितनी है? मथुरा रोड पर निकलते ही तो सुंदरनगर है।"

मिसेज प्रसाद रीता को लेकर जब अपनी कार के पास आईं, तब नवाब अपनी कार का दरवाजा खोलकर उसमें बैठनेवाले थे। मिसेज प्रसाद ने नवाब से कहा—"अरे नवाब साहब! अभी तक आप यहीं हैं।"

"हां, मिसेज प्रसाद, दो-चार मिनट इंजन में लग गए।"

"तब जरा रुकिए।" कहकर मिसेज प्रसाद ने रीता से पूछा—"हम लोग भी इसी कार में चलें, नवाब साहब का साथ भी रहेगा।"

रीता ने सहज भाव से कह दिया—"चलिए, अंकल से काश्मीर की बातों का मजा भी लेते चलेंगे!" मिसेज प्रसाद ने आगे बढ़कर नवाब से कहा—"चलिए, अपनी कोठी तक हम भी आपकी कार में चलें।"

"आइए।"

मिसेज प्रसाद ने अपने ड्राइवर से कहा—"तुम गाड़ी लेकर घर चलो, हम आते हैं।" और फिर रीता को लेकर नवाब की कार में आगे की सीट पर जा बैठी। रीता को देखकर नवाब मूड में आ गए। उन्होंने धीमी गति से गाड़ी को ड्राइव किया। वे लम्बे रास्ते से सुन्दरनगर की ओर बढ़े। उन्होंने संकेत से मिसेज प्रसाद से प्रश्न किया—"कहां चलें ?"

"अपने डेरे पर अरविन्द आश्रम के पास।" मिसेज प्रसाद ने संकेत

से ही बता दिया। जब कार सुन्दरनगर होकर निजामुद्दीन पार करके भी आगे बढ़ती गई, तब रीता को संदेह हुआ। "अंकल, सुन्दरनगर तो पीछे रह गया।"

"थोड़ा घूम लें, कैसी स्वच्छ रात्रि है।" कहकर मिसेज प्रसाद ने रीता की कमर में अपनी बांहें डाल दीं।

"कहो रीता, अब तुमने कोई सलेक्शन किया ?" मिसेज प्रसाद के इस प्रश्न ने रीता को अनायास ही संदेह और भय से भर दिया। इस प्रकार का आचरण उसने रीता के साथ कभी नहीं किया था। वह उद्विग्न मन से रह-रहकर लौट चलने की बात सोचने लगी। पर कार अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रही थी। रीता के मन में रह-रहकर अपनी शंका और उन दोनों के मन की कुत्सा का द्वन्द्व होने लगा।

उसने विचार किया कि यदि मैं जिद्द न करती, मेरी बातें वे दोनों युवक न सुन पाते तो निश्चय ही मेरे साथ दुर्घटना घट जाती। यह विचार आते ही वह सिहर उठी। इसी समय नौकर ने आकर सूचना दी कि यूसुफ-सराय से दो व्यक्ति आपसे मिलने आये हैं।

रीता का भय दूर हो गया। वह वस्त्र संभालकर उठ खड़ी हुई और बाहर बरामदे में उन युवकों के पास आयी। उसने बहुत आदर से उन्हें नमस्कार किया और अन्दर ले गयी। कमरे में पहुंचकर उसने कहा— "आप बैठिये, पापा अभी आते हैं। रात की घटना सुनकर वे बहुत गंभीर हो उठे और मेरे रोकने पर भी नवाब के पास चले गये हैं।"

हमीद ने कहा —"ठीक नहीं हुआ। क्या आपको नवाब का मकान मालूम है, हम वहां हो आते हैं। कहीं उन्हें तकलीफ न हो।"

"थोड़ा इन्तजार कीजिए, मकान तो मुझे नहीं मालूम, पर यदि पापा को देर हुई तो हम कार लेकर पता लगायेंगे। पापा कह गये हैं आप चाय पीजिए—शायद वे जल्दी ही लौटेंगे।" पर केशव और हमीद ने चाय के लिए क्षमा मांगते हुए कहा—"नाश्ता हम लोग करके आये हैं।"

वे बातें करते लगे, परन्तु उसका मन सिन्हा साहब के लिए चिंतित था। वे रह-रहकर द्वार की ओर देख लेते थे। कुछ देर बाद हमीद ने उठते हुए कहा—"केशव, तुम रीता बहन के पास बैठो। मैं जाकर सिन्हा साहब को देखता हूं। रीता बहन, आप अपने ड्राइवर से कहें कि वह मेरे साथ चले।

उसे नवाव की कोठी जरूर मालूम होगी।"

रीता ने भी शंकित होकर कहा—"तव हम सभी चलते हैं। मेरे साथ रहने से आसनी होगी।"

उसने नौकर को बुलाकर कार लाने की आज्ञा दी। ये लोग कार में बैठकर फाटक तक पहुंचे ही थे कि सिन्हा साहव की कार आ पहुंची।

अंदर पहुंचकर सब लोग कार से उतरे। सिन्हा साहव ने आगे बढ़कर दोनों युवकों को अपने आलिंग्न में लेकर उनकी पीठ ठोकी।

"मेरे बच्चो, मैं तुम्हारा वहुत ही शुक्रगुजार हूं। पर आप लोग जा कहां रहे थे?" रीता ने ही उत्तर दिया—"आपके पास ही जा रहे थे। पर आप जल्दी लौट आये।"

नवाब नहीं मिला। पता चला सवेरे के प्लेन से काश्मीर चला गया। खैर, उसे फिर देखूंगा पर आप लोग अपना परिचय तो वताइये।"

हमीद ने अपना और केशव का परिचय दे दिया, पर वह सिन्हा साहब से उनके समाचार जानने के लिए अधीर हो रहा था। इसी से उसने संक्षिप्त-सी जानकारी अपने विषय में देकर तुरंत ही कहा—"लेकिन ये नवाब हैं कौन?" सिन्हा साहव ने भी हंसकर कहा—"वह तो मैं बताऊंगा ही, पर आप लोगों ने चाय भी पी?"

"नहीं पी पापा।" रीता ने उत्तर दिया।

"क्यों भई, क्या बात है?"

"हम लोग तो नाश्ता करके ही घर से चले हैं।"

"नाश्ता तो कई बार हो जाता है, और फिर तुम जैसे नौजवानों का खाने-पीने से परहेज कैसा? मंगाओ रीता चाय मंगाओ।"

रीता चाय लाने चल दी। सिन्हा साहब ने कहा—"अब से आप लोग इस घर के भी मेम्बर हो गये, इसलिए अब तुम मेरे पुत्रों के समान हो। आते-जाते रहा करो और मुझे अपने ऊपर समझो।"

"यह तो हमारा सौभाग्य है कि हमें आप जैसे बुजुर्ग की कुछ सेवा करने का अवसर मिला।"

इसी समय चाय आ गयी। सब लोग चाय पीने लगे। हमीद ने कहा—"पापा, आप हुक्म दें तो मैं काश्मीर नवाब को देखने जाऊं?"

सिन्हा साहब उसकी इस बात पर चकित हो गये।

"क्या करियेगा वहां जाकर ? वह खुद ही भाग गया। सुना है मिसेज प्रसाद भी साथ गयी हैं। अब इस घटना को अधिक व्यापक भी नहीं बनाना चाहिए। एक संकट था, मंडराकर चला गया। ईश्वर ने नवाव भी पैदा किये हैं, और आप जैसे नौजवान भी।"

दोनों युवकों की जिज्ञासा जानकर, उन्होंने बताया कि मिसेज प्रसाद तो यहीं नई दिल्ली सुन्दरनगर में रहती है। विवाह के कुछ समय बाद ही पति बहुत संपत्ति छोड़कर मर गये। सोसाइटी में बहुत घूमती हैं। नवाब को वे ही हमारे यहां लायी थीं। नवाब उनके अत्यन्त कृपापात्र मित्र हैं, सुनते हैं वे पहले लाहौर में रहते थे, परंतु काश्मीर पर पाकिस्तानी हमला होने पर वे वहां पहुंचे और अब वहां की राजनीति में बहुत प्रभाव रखते हैं। जहाँ तक मैं समझता हूं वे राजनीति की आड़ में धन हड़प रहे हैं।"

"यह तो बहुत ही खतरनाक बात है। देश के लिए भी और जन-जीवन के लिए भी।"

"सो तो है ही बच्चो, पर क्या किया जाय। सरकार किस पर विश्वास करे, किस पर न करे। अकेले नेहरू कहाँ तक करें ?"

परंतु केशव से सहन नहीं हुआ उसने उत्तेजित होकर कहा—"बाबू-जी, भगतसिंह के बाद क्रांतिकारी दल बिखर गया, भारत स्वतंत्र होने पर उसका कार्य भी समाप्त हो गया। पर मैं कहता हूं कि अब उसी दल का पुनः प्रादुर्भाव हो और वह ब्रिटिश जनों के स्थान पर इस प्रकार के देश द्रोही और समाजद्रोही तत्वों को ठीक करे। देश में केवल एक दल हो— देशसेवक दल। उसमें योग्यता के बल पर पद दिये जाएं। कांग्रेस सरकार शासन में सफल नहीं हो सकती, क्योंकि इसमें मिनिस्टरों के पद जेल के सर्टिफिकटों पर दिये गये हैं। क्या मजेदार बात है कि एक चपरासी को भी जब नौकरी पर रखा जाता है तब उसकी योग्यता और अनुभव का प्रमाण-पत्र मांगा जाता है, पर मंत्री होने के लिए किसी प्रमाण-पत्र की जरूरत नहीं होती। बस, यह कहना होता है कि एक जाटों का, एक सिखों का, एक हरिजनों का मंत्री भी होना चाहिए। जहाँ चाहा, वहीं उसे चिपका दिया। ये मिनिस्टर अपनी सीट छोड़ने को राजी नहीं होंगे, क्योंकि वह अब उनकी देश-सेवा का प्रतीक न होकर भौतिक सुख और बिजनेस का माध्यम बनता जा रहा है। उनके आफिस में क्लर्क से लेकर अण्डरसेक्रेट्री

तक सब जानते हैं कि उनके सिर पर एक अज्ञानी व्यक्ति बैठा है।"

सिन्हा साहब खिलखिलाकर हंस पड़े। उन्होंने केशव को थपथपाकर कहा—"शावाश बेटे, अब आगामी पीढ़ी के तुम्हीं भगतसिंह बनोगे। तुम जैसे युवक ही गुमराह और देशद्रोही व्यक्तियों को ठीक करेंगे। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।"

## 29. दो नारी

क़ाश्मीर पहुंचकर नवाब ने कहा—"यह तो ठीक नहीं हुआ, अब दिल्ली आने-जाने में रुकावट होगी।"

"क्या तुम्हें उस घटना पर दुःख और अफसोस है ?"

नवाब ने कहना चाहा कि हां, पर वे रुक गये। उन्होंने कहा—"वह सब-कुछ नहीं, पर अभी मैं दिल्ली दो-चार महीने तक नहीं जा सकता।"

"क्यों ?"

"अब तक बात फैल गयी होगी। सिन्हा ने क्या लोगों से कहा नहीं होगा ? मैं एक स्टेट्समैन की पोजिशन रखता हूं, वहां जाकर लोगों की नजरों से कैसे बचूंगा ?"

"बुद्धू हो; हौसला नहीं रखते।" यह कहकर मिसेज प्रसाद हंस दीं। बोलीं—"खैर, अब उस घटना को भुलाने की कोशिश करो, और प्यार-मुहब्बत की बातें करो प्यारे नवाब ?"

यह कहकर उसने अपने शरीर को नवाब के ऊपर डाल दिया। नवाब ने उसे अपनी बांहों में समेटकर कहा—"तुम्हीं मेरी जिंदगी हो रानी। मैं तुम्हारी उस पहली मुलाकात को नहीं भूल सकता, जब लाहौर में हिंदू शरणार्थी कैम्प में भारत सरकार की ओर से औरतों की हिफाजत करने तुम इंचार्ज होकर आयी थीं और मेरे पास राशन की दरख्वास्त लाई थीं। उन दिनों लाहौर कमेटी ने मुझे वह विभाग दे रखा था। मुझसे नजर मिलते ही तुम्हारी आँखें शोख हो उठी थीं।"

"कह नहीं सकती प्यारे नवाब कि मेरे दिल में तुम क्यों समा गये। कभी-कभी इसी प्रकार दो आत्माओं का प्रिय मिलन होता है जो सुखकर होता है।"

"तुम्हारे प्यार की मैं कद्र करता हूं रानी, तुम्हीं ने मेरी सियासी जिंदगी के ख्वाब को पूरा करने में मदद दी। तुम्हारी ही वदौलत मैं आज नेहरू का विश्वासपात्र बना हुआ हूं कितना खुशनसीब हूं कि मुझे तुम जैसी रानी मिली, हिंदुस्तान की दोस्ती मिली, और अब काश्मीर की मंजिल भी करीब है। बहुत करीब ?"

"खतरनाक खेल खेल रही हूं नवाब, इसका क्या नतीजा होगा ?"

"यही, जो तुम चाहती हो।" कहकर नवाब ने उसे कसकर अपने सीने से लगा लिया।"

मिसेज प्रसाद ने आलिंगन से मुक्त होते हुए कहा—"मुझे तुम्हारे प्रेम में कभी-कभी शक होने लगता है ?"

"कैसे रानी, कहो ?"

"तुम औरों पर तुरन्त फिसल जाते हो ?"

"सिर्फ तुम्हारी शह पर।"

"वह तो मैं कभी-कभी दिल्लगी करती हूं, मजा लेती हूं।"

"लेकिन मैं तुम्हारे लिए वफादार हूं रानी।"

"यही बात मेरे दिल की भी है। मैं तुम्हारे लिए वफादार हूं।"

अगले दिन नवाब की सलाह से मिसेज प्रसाद दिल्ली के लिए रवाना हो गयी। नवाब ने उन्हें विदा करते समय कहा—"अभी तुम्हें ज्यादा रोकता, पर मैं दिल्ली में गलतफहमियों को नहीं फैलने देना चाहता। तुम वहाँ रहोगी तो वह सब नहीं होगा। उन्हें रोकना और जल्दी-से-जल्दी वहां आने की मेरी राह बनाना।"

"वेफिक्र रहो नबाव।" कहकर वे विदा हुईं !

परन्तु एक सप्ताह व्यतीत होने पर भी उनका कोई स्पष्ट सन्देश नवाव को प्राप्त नहीं हुआ। केवल इतनी ही सूचना थी कि प्रतीक्षा करे।

नवाव के मन में अनेक शंकाएं उठती थीं। अन्ततः वे बोझिल से हो उठे, और भी परेशानियां थीं। अब तक वे बी हमीदन का प्रेम प्राप्त करने में सफल नहीं हो सके थे। वे जब उसके पास जाते वह भाई की खोज-खबर पूछती। नवाव के असत्य उत्तरों से वह वेरुखी हो उठती और नवाब को वहीं बैठा छोड़ रोती-कलपती चल देती। आज उन्होंने मन को थोड़ा बहलाने के लिए हमीदन के साथ रात व्यतीत करने की इच्छा की।

सूरज डूब रहा था, पश्चिम में लाल-पीले बादलों की शोभा बहुत भली दीख रही थीं। हवा ठण्डी थी। आकाश में दो-चार बादल घूम रहे थे। दो दिन पहले वर्षा हुई थी। उसकी नमी अभी तक धरती और हवा में थी। बी हमीदन खिन्न भाव से बैठी भाई की याद कर रही थी। उदासी के कारण उसका मुंह लटका हुआ था। नवाब की झूठी बातें अब उस पर प्रकट होने लगी थीं। उसे उनकी कुत्सा का भी आभास मिल गया। पर वह बेबस थी। भारत-विभाजन और काश्मीर पर पाकिस्तानी हमलों की सब भयानक घटनाएं उसकी आंखों के सामने घटी थीं; उससे वह अभी तक डरी हुई थी और कहीं जा नहीं सकती थी। भाई से बिछुड़े एक वर्ष से अधिक हो गया था। वह यही सोचती रहती कि हमीद जिन्दा भी है या नहीं।

चोरी-छिपे उसके कानों में नवाब की अन्य सरदारों से हुई गुप्त बातों के कुछ अंश पड़ जाते थे। उन सबका सार यही होता था कि भारत सरकार अहिंसकों और सत्यवादियों की फूंस की सरकार है। हमारे गुरिल्ला युद्ध के आगे एक दिन में ही भाग जायेगी। काश्मीर मेरा है, जिन्ना मर गया अब क्या डर है। अब पाकिस्तान की मदद लेने से भय नहीं। शिकार मारने के लिए उसके शत्रु अपने शत्रु की भी मदद करते हैं। कांग्रेस सरकार से अभी और रुपया आने दो, ज्यादा-से-ज्यादा रुपया उससे हड़पो और गुरिल्ला युद्ध की तैयारी में खर्च करो। हमीदन को यह देखकर बहुत हैरानी होती थी कि एक भारतीय नारी कभी-कभी आकर कुछ दिन नवाब के साथ एकांतवास करती है और नवाब की बड़ी सहायक है।

नवाब उसके कमरे में पहुंचे। देखा, वह उदास भाव से नीचे को मुख किए बैठी हुई है। उन्होंने पीछे से पहुंचकर दोनों हाथों से उसकी आंखों को कोमलता से ढांप लिया। अपने मुख पर किसी को हाथ रखते देख हमीदन झटककर खड़ी हो गई। देखा नावब हैं और प्रणय निवेदन का भाव उनकी आंखों में है। उसने क्रोधपूर्वक कहा—"यह क्या बदतमीजी है।" नवाब इसका उत्तर न देकर उसे अपनी बांहों में लेने को आगे बढ़े।

हमीदन ने उन्हें धकेलते हुए कहा—"नवाब, होश में आइए। मेरा भाई ढूंढने के बहाने आपने मुझे खूब फांसा। पर मैं मछली नहीं हूं—कांटा हूं। आप जैसे नवाबों को फांसना और बाजार में खड़े करके बेच देना मेरा

काम है। दमड़ी का भी नहीं छोड़ूंगी।"

नवाब ने हंसकर कहा—"मैं कांटे में फंसने के लिए तैयार हूं।"

"क्यों नहीं, दामाद तो ससुर से भी ज्यादा रंगीन मालूम होते हैं। पर बेहतर होगा आप यहां से वापस तशरीफ ले जायं।"

"नहीं, अब नहीं। बहुत सब्र किया।"

"तो रुखसत अर्ज है, मजनूं साहेब। होश में आइए। अगर तनिक भी जोर-जबर किया तो जिबह हो जाऊंगी या कर दूंगी।"

इतना कह अपना दुपट्टा संभालती हुई वह तेजी से कमरे से निकल गई। नवाब कुछ नहीं कह सके। हमीदन भागती-बचती फिर शून्य पथ पर आ खड़ी हुई। अब क्या हो और कहां जाय। नवाब के अधिकारों को वह जान चुकी थी उसे भय था कि कहीं उसे फिर न पकड़वा ले, वह काश्मीर से निकल भागने का उपाय सोचने लगी उसने मन में कहा—'मैं भी कैसी मूर्ख हूं, भला हमीद अमृतसर से भागकर इधर क्यों आता, लाहौर जाता —या दिल्ली। हिन्दू आवरण में उसका दिल्ली जाना असम्भव नहीं है। क्यों न अब दिल्ली चलकर उसे तलाश किया जाय।'

काश्मीर पर पाकिस्तान आक्रमण से उत्पन्न संदिग्ध परिस्थिति होने के कारण उसका एकाकी लाहौर लौटना अब सम्भव नहीं था। अतः उसने दिल्ली ही चलने का निश्चय किया। पर वहां जाय कैसे। उसने इधर-उधर पूछताछ की और हिन्दू नारी के वेश में सतर्कता पूर्वक कभी पैदल कभी मोटर में यात्रा कर पठानकोट पहुंच गई।

स्टेशन पर आकर जब वह दिल्ली जाने वाली रेल के जनाने डिब्बे में बैठी तब नव जीवन प्राप्त करने की-सी अनुभूति उसे हो रही थी। डिब्बों में अन्धकार था, अतः उसने यह भी नहीं देखा कि डिब्बे में और कौन-कौन हैं। पर गाड़ी के चलने में अभी देर थी भीड़ बढ़ रही थी। गाड़ी के छूटने तक वह जनाना डिब्बा पूरी तरह पैक हो चुका था। भीड़ और घमस के कारण उसका दम घुटने लगा था। उसने खिड़की से सिर बाहर निकाल लिया और गाड़ी छूटने की प्रतीक्षा करने लगी। गाड़ी ने सीटी दी, उसने देखा कि एक कुली ने सिर से बिस्तर उतारकर खिड़की की राह डिब्बे में डाल दिया और अपने पीछे दौड़ती-हांफती एक वृद्धा को गोद में उठा खिड़की की राह अन्दर धकेलने लगा। अन्दर स्त्रियों ने शोर मचाया—

"अरे यह क्या करता है, यहां जगह नहीं है। क्या बुढ़िया को मारेगा ?"

कुली ने अपनी भाषा में तीखे स्वर में जवाब दिया—"सरको, जरा हटो, मांजी की जगह दो। अकेले तुम्हीं को नहीं जाना है, सभी को जाना है।" ठूंसठास कर वह वृद्धा उसमें आ गई और गाड़ी चल दी। हमीदन पास ही खिड़की के पास बैठी यह सब देख रही थी। गाड़ी में रोशनी हो गई—उसने देखा कि ठूंसी गई स्त्री एक हिन्दू वृद्धा है। खादी की राम-नामी साड़ी उसने पहन रखी है, माथे पर चन्दन का तिलक है। गले में चन्दन के दानों की पतली-सी माला है। उसे देखने पर उसके मुख पर ईश्वर-भक्तों की-सी आभा का भी आभास मिला।

हमीदन ने उससे कहा—"मांजी आप इधर आ जा जाएं, यहां जगह है ?" वृद्धा उधर को चली, पर मार्ग में खड़ी स्त्री ने उसे रोकते हुए कहा —"है भी कहीं जगह, ऊपर मत चढ़ो जाओ, वहीं खड़ी रहो।"

पर हमीदन ने खड़े होकर उसका हाथ पकड़कर उसे अपने स्थान पर बैठा लिया और स्वयं खड़ी हो गई। वृद्धा की हुज्जत नहीं चली। हमीदन ने देखा भागकर आने के कारण उसकी श्वास अभी भी तेजी से चल रही है। उसने दिलासा देते हुए कहा—"आराम से बैठिए मांजी, अब तो आप गाड़ी में आ ही गई हैं। कहां जायेंगी ?"

"दिल्ली।"

"मैं भी दिल्ली चल रही हूं। आप चिन्ता न करें—मैं साथ में हूं। यहीं पठानकोट रहती हैं ?"

"नहीं, रहती तो दिल्ली ही हूं पर इधर माता वैष्णोदेवी का तीर्थ करने गई थी। राह में मोटर खराब हो गई, इसी से देर हुई। भगवान् भला करे कुली का जिसने मुझे बैठा तो दिया।"

"इनका भी तो भला करो, जिन्होंने तुम्हें अपनी सीट दे दी और खुद खड़ी हैं।" पास बैठी महिला ने कहा।

वृद्धा कुछ लज्जित-सी हुई। उसने उठते हु ए कहा—"जाओ बेटी तुम अपनी सीट पर बैठो मैं तो नीचे भी बैठ जाऊंगी।"

हमीदन ने उसे रोकते हुए कहा—" मांजी, आप किसी की न सुनें, मुझे बहुत खुशी है कि आपकी कुछ मदद कर सकी। आप बैठिए।"

वृद्धा फिर बैठ गई। गाड़ी तेज गति से दिल्ली की ओर दौड़ रही

थी। दिल्ली पहुंचते-पहुंचते वृद्धा और हमीदन माता-पुत्री की भांति हिल-मिल चुकी थीं।
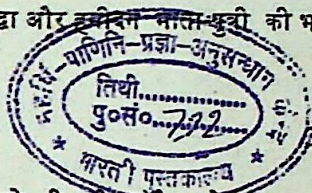


## 30. प्यार

दिल्ली स्टेशन पर ट्रेन रुकते ही भीड़ और शोर बहुत ज्यादा बढ़ गया। उतरने वाले अपने-अपने सामान को समेटकर उतरने की जल्दी मचा रहे थे। स्टेशन पर आए सम्बन्धी और मित्र अन्दर डिब्बे में घुसकर अपनी सवारियों को उतारने में मदद दे रहे थे वृद्धा खिड़की से झांककर अपने पुत्र को प्लेटफार्म पर ढूंढ़ रही थी डिब्बा कुछ खाली हुआ और वृद्धा के कानों में अपने पुत्र की परिचित आवाज पड़ी—"माताजी, माताजी।"

वृद्धा ने खिड़की से बाहर सिर निकालकर कहा—"यहीं हूं बेटे, इधर अन्दर आ जाओ बिस्तर उठा लो। और यह पीछे कौन है, अरे हमीद बेटे तुम भी साथ आए हो?" हमीद नाम सुनकर हमीदन का माथा घूम गया उसने बाहर झांककर देखा—वही है।

"भाई हमीद।" वह आवेश में चीख उठी और दोनों हाथ फैला दिए।

अपनी प्यारी बहन की आवाज पहचानकर हमीद लपककर डिब्बे में घुस आया और बहन को पहचान उसके सीने से चिपक गया। उसके आंसू बह रहे थे और वह बुदबुदा रहा था—"अब तक कहां थी बहन? मैंने तुम्हें कहां-कहां न ढूंढ़ा। तुम उस मौत के साये से बचकर सही सलामत हो, मेरे सामने हो। हे भगवान् तुम बहुत बड़े हो।"

वृद्धा और उसके पुत्र भी इस आकस्मिक मिलन से द्रवित हो उठे थे। वृद्धा ने पूछा—"ये कौन है बेटी?"

"मेरा भाई हमीद। डेढ़ साल बाद मिला है। पाकिस्तान बनने पर हम अपना घर छोड़ अमृतसर से लाहौर जा रहे थे। रात अन्धेरी थी। हम गलियों में लुकते-छिपते भाग रहे थे कि हल्ला सुन भीड़ बढ़ गई और हम बिछुड़ गए। मैं गिरती-पड़ती लाहौर पहुंची पर इसका पता न चला। बहुत दिन तक लाहौर में ढूंढ़ा, वहां सुना श्रीनगर में मिलेगा वहीं से ढूंढ़ती-ढूंढ़ती पठानकोट से दिल्ली मैं इनकी खोज में चली हूं।"

वृद्धा ने हमीद को अपनी ओर खींच उसके सिर पर हाथ फेरकर

कहा—"जुग-जुग जिओ वेटा। भगवान् को धन्यवाद दो जिसने तुम्हारी बहन को फिर मिला दिया।"

"मेरी तो तुम्हीं भगवान् हो मां तुम ही इसे लाई हो?" फिर उसने हमीदन से कहा—"बहन, अपने इस भाई से भी मिलो। इन्हीं ने मुझे जीवन दिया है, इन्हीं के पास रहता हूं।"

हमीदन ने आगे बढ़ केशव के कंधे पर हाथ फेरकर कहा —"भाई, ईश्वर तुम्हारी उम्र बड़ी करे। क्या नाम है तुम्हारा।"

"केशव।" वृद्धा ने उत्तर दिया। मेरे एक ही वेटा था, केशव, हमीद के आने से दो हो गए। अब ईश्वर ने बेटी भी दे दी। अब घर सम्पन्न हो गया, इसमें सौरभ खिल उठा। आओ चलें।"

सब डिब्बे से बाहर आए। सबकी आंखे गीली थीं, प्यार और वात्सल्य का स्रोत उनमें फूट पड़ा था।

बी हमीदन की सूचनाओं के आधार पर सिन्हा साहब ने भारत सरकार को ननकू नवाब के भारत-विरोधी राजनैतिक षड्यन्त्र का ज्ञान कराया। उन्हें तुरन्त गिरफ्तार किया गया और आरोपों के सही प्रमाणित होने पर उन्हें शूट कर दिया गया। शूट करने से पहले उनसे पूछा गया—"कुछ कहना चाहते हो?"

"हां।"

"कहो?"

"बाहर के दुश्मन से डर नहीं होता, घर के दुश्मन से होता है।"

"क्या तुम्हारा संकेत मिसेज प्रसाद से है?"

"नहीं, बी हमीदन से।"

"और कुछ?"

"मुझे मृत्युदण्ड देना न्याय-विरुद्ध है।"

"तुमने देश में रहते देशद्रोह किया है।"

"प्रत्येक व्यक्ति को अपने राजनैतिक विचार प्रकट करने की संविधान में स्वतन्त्रता है।"

"तुमने अपने देशद्रोही विचार प्रकट ही नहीं किए, कार्यान्वित भी किए हैं, तुम अपने देश को अपना नहीं समझते—यही राजद्रोह है। देश की एकता में बाधा डालना, उसकी समृद्धि को रोकना, देश का धन हड़-

षना, जन-साधारण में देशद्रोह फैलाना भयानक अपराध है। तुम राजनेता नहीं—दस्यु हो, राजनेता देश के सुख सौभाग्य का मार्ग-दर्शक होता है, परन्तु देश को युद्ध की ओर ले जानेवाला दस्यु है, वह घृणित और दण्डनीय है। कारावास का दण्ड उसके लिए यथेष्ट नहीं।"
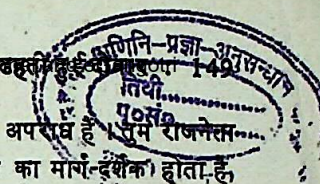


"लेकिन भारत कभी एक नहीं है। उसमें जुदा-जुदा कौमें रहती हैं।"

"भारत एक है और रहेगा। तुम्हारे जैसे दस्यु अपने दिमागी खब्तत से उसमें कुविचार उत्पन्न कर उसे रक्तपात और युद्ध की ओर ले जाते हैं। युद्ध मानव की सम्पत्ति नहीं, पशु की प्रकृति है। तुमने मनुष्य होकर अपने विकास की सारी ही प्रतिभा और प्रगति पशुत्व के विकास में व्यय की। मनुष्य में जो रोष है वही पशुत्व का प्रतीक है। विचारहीन होते ही वह हिंसक बन जाता है। विश्व के सब मनुष्य एक हैं, परन्तु तुम जैसे दस्यु उन्हें परस्पर भाई-भाई नहीं रहने देते, उन्हें अभय नहीं रहने देते, उन्हें सुख, सम्पन्न और शांतिप्रिय जीवन नहीं बिताने देते। मानव-कल्याण से दूर मानव-वध की ओर तुम्हारी दृष्टि है। इसीसे तुम राजनैतिक अपराधी नहीं, घृणा फैलाने वाले षड्यन्त्रकारी दस्यु हो। तुम्हारा कोर्ट मार्शल होना सही न्याय है। सावधान, शूट।"

इसके बाद उन पर रायफल दाग दी गई। मिसेज प्रसाद की सब सम्पत्ति जप्त कर उन्हें दस वर्ष का कठिन कारावास दिया गया।

सिन्हा के आदेश और संरक्षण में हमीदन ने उन्हीं की विशाल कोठी के कक्ष में एक बालिका-नृत्य-गायन स्कूल खोल लिया है। बहू उसी स्कूल में सहायक और प्रबन्धक है। केशव एक कालेज में लेक्चरार लग गये थे और हमीद को गुप्तचर विभाग में उच्च पद दिया गया। एक दिन संध्या समय जब केशव अपने जन्म-दिन पर सिन्हा साहब को प्रणाम करने गये तो उन्होंने प्रणाम कर मिठाई का पैकट रीता के सामने सरका दिया।

"अरे यह क्या ?" सिन्हा साहब ने पूछा।

"आज मेरा जन्म-दिन है, माताजी ने भेजी है।"

रीता ने मिठाई का एक टुकड़ा मुंह में डालकर कहा—"केशव बाबू, आज तो अपनी माताजी के पास मुझे ले चलिए, हमेशा टाल जाते हैं आप। केशव ने कुछ संकोच से कहा—"अच्छा, आज चलिए !"

"अरे, आप डरते क्यों हैं, मैं वहां ज्यादा मिठाई नहीं खाऊंगी। मिठाई

यहां खा चुकी।" इस पर सब हंस पड़े। रीता पिता से आज्ञा ले उठकर चली गई। कुछ देर बाद वह केशविन्यास करके आई और केशव का हाथ पकड़कर कहा—"आइए चलें; शोफर कार ले आया है?"

आज प्रथम बार अयाचित रूप से रीता के मृदुल कोमल गर्म-नर्म हाथों का स्पर्श पाकर केशव को रोमांच हो आया। उसकी आंखें नीचे झुक गई। उसने तुरन्त हाथ खींचकर उठते हुए सिन्हा साहब से पूछा—"ले जाऊं बाबूजी, आज्ञा दीजिए।"

"हां, बेटे जाओ और देखो अपनी माताजी से कहना—कल सवेरे मैं भी आऊंगा।" केशव ने आश्चर्य से उनकी ओर देखा, फिर नम्रता से कहा—"आपको कष्ट......"

"मुझे उनसे एक काम है बेटे, अच्छा जाओ खुश रहो।"